कमल मनोविज्ञान माला—१०

हमारे जीवन का अर्थ

(भाग तीन)

रक की What Life Should Mean to You का अनुवाद

लेखक
एल्फ्रेड एडलर

अनुवादक
ओं प्रकाश

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

क्रम

: ५ :

स्वप्न

प्राय: सभी मनुष्य स्वप्न देखा करते हैं, लेकिन उनमें से जो
प्नों का अर्थ समझ सकते हैं उनकी संख्या बहुत ही कम है।
ह बात आश्चर्यप्रद जान पड़ना खूब सम्भव है। स्वप्न लेना
ानव-मन की एक साधारण क्रिया है। मनुष्य सदा ही स्वप्नों
दिलचस्पी लेते रहे हैं और सदा ही उनका अर्थ लगाने में
गान रहे हैं। बहुत-से लोग सोचते हैं कि उनके स्वप्नों का
भिप्राय गम्भीर हुआ करता है। वह इन्हें महत्त्वपूर्ण और
चित्र समझा करते हैं। मानव-इतिहास के प्रारंभ से ही हम
म दिलचस्पी का वर्णन पा सकते हैं। लेकिन फिर भी लोगों
ो इसका किञ्चिद् भी ज्ञान नहीं कि स्वप्न देखने के समय वह
्या कर रहे होते हैं अथवा वह स्वप्न देखते ही क्यों हैं। जहाँ
क मुझे मालूम है स्वप्नों का अर्थ समझने के लिए दो ही
सिद्धान्त हैं जो सर्वाङ्गीण और वैज्ञानिक तल तक पहुँचने का
यत्न करते हैं। उनमें से एक तो फ्रायड के मनोविश्लेषण का
सिद्धान्त है और दूसरा वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त।
इन दोनों में से शायद वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक ही यह दावा
कर सकेंगे कि उनकी व्याख्या साधारण समझ-बूझ की कसौटी
पर ठीक उतरती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वप्नों को समझने की पुरातन
कोशिशें वैज्ञानिक नहीं थीं, किन्तु उन पर भी ध्यान देना योग्य
है। कम-से-कम वह कोशिशें यह तो स्पष्ट करेंगी कि मनुष्य

स्वप्नों का क्या अर्थ समझते रहे हैं, स्वप्नों के प्रति उनका दृष्टिकोण क्या रहा है। स्वप्न मन की सृजनात्मक क्रियाशीलता के अंश होते हैं और यदि हम यह जान सकें कि लोगों को स्वप्नों से क्या आशा रही है तो हम स्वप्नों के उद्देश्य को जाँचने के काफी समीप पहुँच सकेंगे। अपने अन्वेषण के ठीक प्रारम्भ में ही हमें एक महत्त्वपूर्ण बात का पता चलता है। यह सदा माना जाता रहा है कि स्वप्नों का भविष्य पर कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य रहता है। लोग ऐसा अनुभव करते हैं कि कोई पारलौकिक शक्ति, कोई देवता अथवा पूर्वज उनके मनों को वश में करके उन्हें प्रभावित करते हैं। जब कभी वह कठिनाइयों में होते थे तो मार्ग-प्रदर्शन के लिए स्वप्नों का प्रयोग करते थे। स्वप्न-सम्बन्धी पुरानी पुस्तकें यह बतलाने की कोशिश करती थीं कि जिस व्यक्ति ने स्वप्न देखा है उसके भाग्य और भविष्य के प्रसंग में उस स्वप्न का क्या अर्थ है। असभ्य जातियाँ अपने स्वप्नों में शकुनों और भविष्यवाणियों की तलाश किया करती थीं। यूनान और मिश्रदेश के लोग ऐसे पवित्र स्वप्न देखने के लिए मन्दिरों में प्रार्थना किया करते थे जो उनके भविष्य जीवन को प्रभावित कर सकें। ऐसे स्वप्नों का प्रभाव उपचारक समझा जाता था और कहा जाता था कि यह शारीरिक और मानसिक उलझनों को मिटा सकते हैं। अमरीका के आदिवासी अपने को पवित्र बनाकर, उपवास करके तथा पसीने से स्नान करके स्वप्न देखने के विशेष प्रयत्न किया करते थे और अपने व्यवहार को उन अर्थों पर आश्रित करते थे जो कि वह उन स्वप्नों को देते थे। पुरानी बाइबल (ओल्ड टेस्टामेण्ट) में स्वप्नों को सदा ऐसा माना और कहा गया है जो कि आनेवाली घटनाओं का पूर्व-ज्ञान करा सकते हैं। आज भी ऐसे व्यक्ति हैं जो इस बात को जोर देकर कहते हैं कि उन्होंने ऐसे स्वप्न देखे जो कि बाद

में ठीक निकले। उनका विश्वास है कि स्वप्न में वह ज्योतिषी बन जाते हैं और किसी न-किसी तरह स्वप्न-भविष्य को टटोल सकते हैं और यह बता सकते हैं कि आगे क्या होने वाला है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हमें ऐसे विचार अनर्गल जान पड़ते हैं। पहले पहल स्वप्नों की समस्या को जब मैंने सुलझाना चाहा तो मुझे यह स्पष्ट जान पड़ा कि जो व्यक्ति स्वप्न देख रहा होता है वह भविष्य के विषय में कुछ भी कहने में उस व्यक्ति से कहीं अधिक बुरी दशा में है जिसकी कि सामर्थ्य उसके अपने वश में है और जो जाग रहा है। यह बात प्रत्यक्ष थी कि स्वप्न दिन-प्रति-दिन के मनन विचार से अधिक बुद्धिसङ्गत और भविष्य-दर्शक नहीं समझे जा सकते, वरन् वह भ्रमपूर्ण और भ्रामक होते हैं। फिर भी मानव की इस परम्परागत विचारधारा पर हमें ध्यान करना ही पड़ेगा कि स्वप्न किसी-न-किसी प्रकार भविष्य से सम्बन्धित हैं और शायद एक पहलू से इस बात को हम असत्य भी न पाएँ। यदि हम इस पर निष्पक्ष दृष्टि से विचार कर सकें तो यह बात हमें उस सत्य की ओर निर्दिष्ट करेगी जो कि अब तक अस्पष्ट रहा है। हम देखते हैं कि मनुष्य स्वप्नों को अपनी कठिनाइयों का सुझाव सुझाने वाले मानते रहे हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि किसी व्यक्ति का स्वप्न देखने से अभिप्राय भविष्य के लिए मार्ग-प्रदर्शन और अपनी समस्याओं का हल ढूँढने से होता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि स्वप्न में भविष्यवाणी की शक्ति होती है। हमें तो अभी यह भी देखना है कि स्वप्न देखने वाला व्यक्ति किस तरह का हल तलाश कर रहा है और वह उसे किस दिशा से पाने का यत्न करता है। यह स्पष्ट है कि यदि हम समस्त स्थिति पर विचार कर सकें तो स्वप्न द्वारा सुझाया हुआ हल साधारण बुद्धि के मनन या विचार द्वारा सूझे हुए हल से

स्वप्नों का क्या अर्थ समझते रहे हैं, स्वप्नों के प्रति उनका दृष्टिकोण क्या रहा है। स्वप्न मन की सृजनात्मक क्रियाशीलता के अंश होते हैं और यदि हम यह जान सकें कि लोगों को स्वप्नों से क्या आशा रही है तो हम स्वप्नों के उद्देश्य को जाँचने के काफी समीप पहुँच सकेंगे। अपने अन्वेषण के ठीक प्रारम्भ में ही हमें एक महत्त्वपूर्ण बात का पता चलता है। यह सदा माना जाता रहा है कि स्वप्नों का भविष्य पर कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य रहता है। लोग ऐसा अनुभव करते हैं कि कोई पारलौकिक शक्ति, कोई देवता अथवा पूर्वज उनके मनों को वश में करके उन्हें प्रभावित करते हैं। जब कभी वह कठिनाइयों में होते थे तो मार्ग-प्रदर्शन के लिए स्वप्नों का प्रयोग करते थे। स्वप्न-सम्बन्धी पुरानी पुस्तकें यह बतलाने की कोशिश करती थीं कि जिस व्यक्ति ने स्वप्न देखा है उसके भाग्य और भविष्य के प्रसंग में उस स्वप्न का क्या अर्थ है। असभ्य जातियाँ अपने स्वप्नों में शकुनों और भविष्यवाणियों की तलाश किया करती थीं। यूनान और मिस्रदेश के लोग ऐसे पवित्र स्वप्न देखने के लिए मन्दिरों में प्रार्थना किया करते थे जो उनके भविष्य जीवन को प्रभावित कर सकें। ऐसे स्वप्नों का प्रभाव उपचारक समझा जाता था और कहा जाता था कि यह शारीरिक और मानसिक उलझनों को मिटा सकते हैं। अमरीका के आदिवासी अपने को पवित्र बनाकर, उपवास करके तथा पसीने से स्नान करके

में ठीक निकले। उनका विश्वास है कि स्वप्न में वह ज्योतिषी बन जाते हैं और किसी न किसी तरह स्वप्न-भविष्य को टटोल सकते हैं और यह पता सकते हैं कि आगे क्या होने वाला है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हमें ऐसे विचार अनर्गल जान पड़ते हैं। पहले पहल स्वप्नों की समस्या को जब मैंने सुलझाना चाहा तो मुझे यह स्पष्ट जान पड़ा कि जो व्यक्ति स्वप्न देख रहा होता है वह भविष्य के विषय में कुछ भी कहने में उस व्यक्ति से कहीं अधिक बुरी दशा में है जिसकी कि सामर्थ्य उसके अपने वश में है और जो जाग रहा है। यह बात प्रत्यक्ष थी कि स्वप्न दिन-प्रति-दिन के मनन विचार से अधिक बुद्धिसङ्गत और भविष्य-दर्शक नहीं समझे जा सकते, वरन वह भ्रमपूर्ण और भ्रामक होते हैं। फिर भी मानव की इस परम्परागत विचारधारा पर हमें ध्यान करना ही पड़ेगा कि स्वप्न किसी-न-किसी प्रकार भविष्य से सम्बन्धित हैं और शायद एक पहलू से इस बात को हम असत्य भी न पाएँ। यदि हम इस पर निष्पक्ष दृष्टि से विचार कर सकें तो यह बात हमें उस सत्य की ओर निर्दिष्ट करेगी जो कि अब तक अस्पष्ट रहा है। हम देखते हैं कि मनुष्य स्वप्नों को अपनी कठिनाइयों का सुझाव सुझाने वाले मानते रहे हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि किसी व्यक्ति का स्वप्न देखने से अभिप्राय भविष्य के लिए मार्ग-प्रदर्शन और अपनी समस्याओं का हल ढूँढने से होता है। इसका यह अर्थ

कहीं बुरा होगा। यह कह देना भी असङ्गत नहीं है कि स्वप्न देखते समय एक व्यक्ति अपनी समस्याओं को सोते हुए ही सुलझा लेना चाहता है।

फ्रायड के सिद्धान्तों में हम स्वप्न का अर्थ लगाने की और उस अर्थ को वैज्ञानिक तरीके पर समझने की पहली सच्ची कोशिश पाते हैं। परन्तु कुछ बातों में फ्रायड की परिभाषा ने स्वप्न को वैज्ञानिक अनुसन्धान से बाहर की चीज बना दिया है। उदाहरण के लिए इस परिभाषा के अनुसार मन के दिन और रात के कार्य-कलाप में अन्तर होता है। 'चेतन मन' और 'अचेतन मन' को परस्पर विरोधी संज्ञाएँ मान लिया गया है और स्वप्न के सम्बन्ध में ऐसे विशेष नियम निर्धारित कर दिये गए हैं जो साधारण विचारों से विरोधाभास लिये होते हैं। हमें जहाँ-कहीं भी ऐसा विरोध जान पड़े वहाँ मन के अवैज्ञानिक दृष्टिकोण की कल्पना कर लेनी चाहिए। असभ्य जातियों और पुरातन दार्शनिकों की विचारधारा में मान्यताओं को प्रबल विरोधाभास देने की, उन्हें परस्पर विरोधी समझ लेने की, प्रवृत्ति और इच्छा मिलती है। विरोधाभास की इस प्रवृत्ति का उदाहरण स्पष्टतया स्नायुरोगियों में प्रदर्शित किया जा सकता है। लोगों में आम विचार है कि बायाँ और दायाँ परस्पर

स्वप्न के विचारों और जागरण के विचारों को परस्पर विरोधी बताता है, निश्चय ही अवैज्ञानिक सिद्धान्त है।

फ्रायड के मौलिक सिद्धान्त में एक और कठिनाई यह है कि काम-विषयक पृष्ठभूमि के आगे ही स्वप्नों का अध्ययन किया गया है। इस बात ने भी स्वप्नों को मनुष्यमात्र की साधारण आकांक्षाओं और प्रयत्नों से अलग कर दिया है। यदि यही बात ठीक हो तो स्वप्नों का अर्थ समूचे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति न रहकर व्यक्तित्व के केवल एक अंश की अभिव्यक्ति ही रह जायगा। स्वयं फ्रायडवादियों ने स्वप्नों की कामाश्रित व्याख्या को सम्पूर्ण नहीं पाया और फ्रायड ने बताया कि स्वप्नों में मरने की अव्यक्त इच्छा की अभिव्यक्ति भी पाई जाती है। शायद एक दृष्टिकोण से हम इसे सही भी मान सकते हैं। जैसा कि हमने देखा है स्वप्न समस्याओं के सरल उत्तर पाने के प्रयत्न होते हैं और व्यक्ति की उत्साहहीनता को प्रदर्शित करते हैं। किन्तु फ्रायड द्वारा प्रयुक्त भाषा बहुत अलङ्कारिक है और इससे हम भली प्रकार नहीं जान पाते कि किस तरह सारा व्यक्तित्व ही स्वप्नों में प्रतिबिम्बित होता है। एक बार फिर स्वप्न की दुनिया जागरण-काल की दुनिया से बिलकुल न्यारी दीख पड़ती है। फ्रायड की विवेचनाओं में हमें कितनी ही महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प बातें मिलती हैं। उदाहरण के लिए विशेष महत्त्व की एक बात यह है कि स्वप्नों का ही अपने में कोई महत्त्व नहीं होता, परन्तु स्वप्नों का महत्त्व उनके अन्तर्गत विचारों में होता है। वैयक्तिक मनोविज्ञान में भी हम लगभग ऐसे ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। किन्तु जो बात मनोविश्लेषण में नहीं पाई जाती, वही मनोविज्ञानशास्त्र की पहली आवश्यक बात है—यह बात कि व्यक्तित्व में सामञ्जस्य और उसकी विविध अभिव्यक्तियों में ऐक्य रहता है।

कहीं बुरा होगा। यह कह देना भी असङ्गत नहीं है कि स्वप्न देखते समय एक व्यक्ति अपनी समस्याओं को सोते हुए ही सुलझा लेना चाहता है।

फ्रायड के सिद्धान्तों में हम स्वप्न का अर्थ लगाने की और उस अर्थ को वैज्ञानिक तरीके पर समझने की पहली सची कोशिश पाते हैं। परन्तु कुछ बातों में फ्रायड की परिभाषा ने स्वप्न को वैज्ञानिक अनुसन्धान से बाहर की चीज बना दिया है। उदाहरण के लिए इस परिभाषा के अनुसार मन के दिन और रात के कार्य-कलाप मे अन्तर होता है। 'चेतन मन' और 'अचेतन मन' को परस्पर विरोधी संज्ञाएँ मान लिया गया है और स्वप्न के सम्बन्ध में ऐसे विशेष नियम निर्धारित कर दिये गए हैं जो साधारण विचारों से विरोधाभास लिये होते हैं। हमें जहाँ-कहीं भी ऐसा विरोध जान पड़े वहाँ मन के अवैज्ञानिक दृष्टिकोण की कल्पना कर लेनी चाहिए। असभ्य जातियों और पुरातन दार्शनिकों की विचारधारा मे मान्यताओं को प्रबल विरोधाभास देने की, उन्हे परस्पर विरोधी समझ लेने की, प्रवृत्ति और इच्छा मिलती है। विरोधाभास की इस प्रवृत्ति का उदाहरण स्पष्टतया स्नायुरोगियों मे प्रदर्शित किया जा सकता है। लोगों में आम विश्वास है कि बायाँ और दायाँ परस्पर विरोधी संज्ञाएँ हैं; कि स्त्री और पुरुष, गर्म और ठण्डा, भारी और हलका, सबल और निर्बल—यह सब परस्पर विरोधी बातें हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह विरोधी बातें नहीं हैं, परन्तु भिन्नताएँ हैं। यह तो एक ही मापदण्ड की मात्राएँ हैं और इनका निर्धारण किसी काल्पनिक आदर्श से सामीप्य अथवा दूरी का विचार करके किया जाता है। इसी प्रकार भला और बुरा, साधारण और असाधारण, विरोधी बातें नहीं हैं परन् भिन्नताएं हैं। कोई भी ऐसा सिद्धान्त जो सोने और जागने को,

प्यार से बिगड़े बच्चों का समूचा मनोविज्ञान-मात्र है, जो यह अनुभव करता है कि उसके अन्तर की कामनाओं को कभी भी अपूर्ण नहीं रहना है, जो दूसरों की जीवन-सत्ता तक को अपने लिए अन्यायपूर्ण समझता है, जो सदा यही पूछता रहता है—"मैं अपने पड़ोसी से क्यों प्रेम करूँ ? क्या मेरा पड़ोसी मुझसे प्रेम करता है ?" मनोविश्लेषक लाड-प्यार से बिगड़े ऐसे बच्चों के अध्ययन से अपना पाठ आरम्भ करता है और इसी विषय पर सुविस्तृत विवेचना जारी रखता है। परन्तु आत्मसन्तुष्टि की अभिलाषा और उसके लिए प्रयत्न तो श्रेष्ठ बनने के उन लाखों प्रयत्नों में से एक ही है और हम इसीको किसी व्यक्तित्व की सभी अभिव्यक्तियों का मौलिक ध्येय नहीं मान सकते। यदि वास्तव में हमें स्वप्नों के उद्देश्य का पता चल ही जाय तो यह बात जानने में भी हमें आसानी हो जानी चाहिए कि स्वप्नों को भूल जाने से अथवा उन्हें न समझ सकने से क्या अभिप्राय पूरा होता है।

कोई पच्चीस वर्ष पहले जब मैंने स्वप्नों का अर्थ समझने का प्रयत्न शुरू किया तो मेरे सामने यही सबसे पेचीदा सवाल था। मैं यह समझता था कि स्वप्न का जागृति-काल के जीवन से कोई विरोध नहीं है; आवश्यक रूप में इसका जीवन की दूसरी गतियों और अभिव्यक्तियों से मेल होना ही है। यदि दिन के समय हम श्रेष्ठता के ध्येय की ओर प्रयत्नशील रहते हैं तो रात को भी इसी समस्या से उलझते रहते होंगे। प्रत्येक व्यक्ति को इस तरह स्वप्न देखने हैं जैसे कि स्वप्न देखकर कोई कर्तव्य निभ रहा हो, जैसे स्वप्नों में भी उसने श्रेष्ठता के ध्येय की ओर अग्रसर होना हो। इन स्वप्नों को अवश्य ही जीवन-प्रणाली की उपज होना है और इनसे जीवन-प्रणाली के निर्माण में तथा उसको वास्तविकता में बदलने में सहायता मिलनी चाहिए।

यह सभी फ्रायड के सिद्धान्तों के अनुसार स्वप्नों की परि-भाषा-सम्बन्धी इस प्रश्न के उत्तर में भी स्पष्ट होगी है—"स्वप्नों का उद्देश्य क्या होता है ?" "हम आखिर स्वप्न देखते ही क्यों है ?" मनोविश्लेषक इसका उत्तर देता है -"व्यक्ति की अपूर्ण इच्छाओं की सन्तुष्टि के लिए।" परन्तु इस उत्तर में सब बातें स्पष्ट नहीं हो जाती। यह सन्तुष्टि कैसे मिल सकती है जबकि स्वप्न ही भूल जाए, यदि उस स्वप्न को व्यक्ति खो दे, अथवा उसे समझ ही न सके ? मनुष्यमात्र स्वप्न देखता है, परन्तु कदाचित ही कोई अपने स्वप्न के अर्थ समझता हो। स्वप्नों से हमें क्या सुख मिल सकता है ? यदि स्वप्नों की दुनिया और जागरण-काल की दुनिया अलग-अलग हैं और यदि स्वप्नों में प्राप्त सन्तोष उस स्वप्न-जगत् में ही मिलता है, तो शायद हम स्वप्न लेनेवाले के स्वप्न-सम्बन्धी उद्देश्य समझ सकें। परन्तु इससे व्यक्तित्व की एकरूपता व सामञ्जस्य नहीं बना रह सकता। ऐसी अवस्था में जागते हुए मनुष्य के लिए स्वप्नों का कोई अर्थ अथवा उद्देश्य ही नहीं रह जाता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तो स्वप्न लेता हुआ और जागता हुआ मनुष्य एक ही व्यक्ति होता है और स्वप्नों का उद्देश्य इस समूचे व्यक्तित्व से सम्बन्धित होना चाहिए। यह ठीक है कि एक विशेष चरित्र के मनुष्यों में स्वप्न की इच्छाओं की पूर्ति के प्रयत्न हम उनके समूचे व्यक्तित्व से जोड़ सकते हैं। यह चरित्र लाड़-प्यार से बिगड़े बच्चों का होता है—उस व्यक्ति का जो सदा यह पूछा करता है—"मुझे सन्तुष्टि किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?" "जीवन से मुझे क्या मिल रहा है ?" सम्भव है कि ऐसा व्यक्ति स्वप्नों में भी अपनी सन्तुष्टि पाने का यत्न करे जैसा कि वह अपनी शेष सब अभिव्यक्तियों में करता है। वैसे यदि हम गौर से देखें तो हमें पता चलेगा कि फ्रायड के सिद्धान्त ऐसे लाड़-

प्यार से बिगड़े बच्चों का समूचा मनोविज्ञान-मात्र है, जो यह अनुभव करता है कि उसके अन्तर की कामनाओं को कभी भी अपूर्ण नहीं रहना है, जो दूसरों की जीवन-सत्ता तक को अपने लिए अन्यायपूर्ण समझता है, जो सदा यही पूछता रहता है—"मैं अपने पड़ोसी से क्यों प्रेम करूँ ? क्या मेरा पड़ोसी मुझसे प्रेम करता है ?" मनोविश्लेषक लाड़-प्यार से बिगड़े ऐसे बच्चों के अध्ययन से अपना पाठ आरम्भ करता है और इसी विषय पर सुविस्तृत विवेचना जारी रखता है। परन्तु आत्मसन्तुष्टि की अभिलाषा और उसके लिए प्रयत्न तो श्रेष्ठ बनने के उन लाखों प्रयत्नों में से एक ही है और हम इसीको किसी व्यक्तित्व की सभी अभिव्यक्तियों का मौलिक ध्येय नहीं मान सकते। यदि वास्तव में हमें स्वप्नों के उद्देश्य का पता चल ही जाय तो यह बात जानने में भी हमें आसानी हो जानी चाहिए कि स्वप्नों को भूल जाने से अथवा उन्हें न समझ सकने से क्या अभिप्राय पूरा होता है।

कोई पच्चीस वर्ष पहले जब मैंने स्वप्नों का अर्थ समझने का प्रयत्न शुरू किया तो मेरे सामने यही सबसे पेचीदा सवाल था। मैं यह समझता था कि स्वप्न का जागृति-काल के जीवन से कोई विरोध नहीं है; आवश्यक रूप में इसका जीवन की दूसरी गतियों और अभिव्यक्तियों से मेल होना ही है। यदि दिन के समय हम श्रेष्ठता के ध्येय की ओर प्रयत्नशील रहते हैं तो रात को भी इसी समस्या में उलझते रहते होंगे। प्रत्येक व्यक्ति को इस तरह स्वप्न देखने हैं जैसे कि स्वप्न देखकर कोई कर्तव्य निभ रहा हो, जैसे स्वप्नों में भी उसने श्रेष्ठता के ध्येय की ओर अग्रसर होना हो। इन स्वप्नों को अवश्य ही जीवन-प्रणाली की उपज होना है और इनसे जीवन-प्रणाली के निर्माण में तथा उसको वास्तविकता में बदलने में सहायता मिलनी चाहिए।

एक बात से स्वप्नों के उद्देश्य के स्पष्ट हो जाने में तुरन्त सहायता मिलती है। हम स्वप्न तो देखते हैं किन्तु प्रातः उठते ही प्रायः सब स्वप्नों को भूल जाते हैं। कुछ भी बाकी नहीं रह जाता। परन्तु क्या यह ठीक है? क्या कुछ भी शेष नहीं रहता? कुछ तो रह ही जाता है; हमारे पास वह भाव रह जाते हैं जिन्हें कि स्वप्नों ने पैदा किया है। उस चित्र में से कुछ भी नहीं रह जाता; स्वप्न की समझ-बूझ भी मिट जाती है; केवल भाव ही रह जाते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि स्वप्नों का उद्देश्य उन्हीं भावों को जगाने में है जो शेष रह जाते हैं। इस प्रकार स्वप्न उन भावों को जाग्रत करने का केवल एक तरीका, एक साधन हो जाता है। स्वप्न का उद्देश्य वही भाव है, जो कि पीछे शेष रह जाते हैं।

कोई व्यक्ति जैसा भी भाव पैदा करता है, आवश्यक है कि वह उसकी जीवन-प्रणाली से मेल खाते हों। स्वप्न के विचारों और दिन के विचारों में भिन्नता मौलिक नहीं होती; उन्हें कोई सख्त दीवार अलग नहीं करती। इस भेद को संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं कि स्वप्नों में वास्तविकता से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु ऐसा भी नहीं है कि वास्तविकता से सम्बन्ध बिलकुल ही भङ्ग हो जाय। यदि समस्याओं ने हमें उलझाया हुआ है तो हमारी नींद भी उचटी रहेगी। यही बात, कि सोते हुए भी हम इस प्रकार अपने ऊपर अनुशासन रख सकते हैं कि बिछौने से गिर न जायँ, बताती है कि वास्तविकता से इस दशा में भी सम्बन्ध बना रहता है। बाजार के बड़े शोरोगुल में भी एक माँ सोई रह सकती है, किन्तु उसके बच्चे की ज [illegible]-सी हिलजुल भी उसे जगा देती है। सुप्तावस्था में भी हम [illegible] के सम्पर्क में रहते हैं। परन्तु सोते हुए हमारी ज्ञाने-[illegible]ना बिलकुल समाप्त तो नहीं, कम अवश्य हो जाती

है, और वास्तविकता से हमारा सम्बन्ध धुंधला-सा हो जाता है। जब हम स्वप्न देखते हैं तो हम अकेले होते हैं। समाज की मांगों व प्रतिबन्धों का हमारे लिए कोई अर्थ नहीं रह जाता। हम अपनी परिस्थितियों का ईमानदारी से ध्यान रक्खें, स्वप्न की दुनिया में ऐसी कोई प्रेरणा नहीं रह जाती।

हमारी नींद तब ही विघ्नहीन हो सकती है जबकि हममें किसी तरह का आवेश न हो और अपनी समस्याओं के सुलझाव के विषय में हम निश्चित और निश्चिन्त हों। स्वप्न शान्त और सुखद नींद में बाधा का एक नमूना है। हम इस परिणाम पर पहुँच सकते हैं, कि हम तब ही स्वप्न देखते हैं जबकि अपनी समस्याओं के हल के विषय में हम निश्चिन्त न हों, जब कि वास्तविकता का दबाव हमें नींद में भी महसूस हो और हमारे सामने कठिनाइयाँ प्रस्तुत करे। स्वप्न का यह काम होता है—जो कठिनाइयाँ हमारे सामने उपस्थित हैं उनका सामना करना और उनका हल सुझाना। अब हमें स्पष्ट होने लगेगा कि सोते हुए उन समस्याओं से हमारे मन किस प्रकार भिड़ेंगे। क्योंकि हमारा सामना सम्पूर्ण परिस्थिति से नहीं होता, वह समस्याएँ सरल होंगी और जो हल सुझाये जायेंगे वह भी हमसे कम से-कम परिवर्तन और सन्तुलन की मांग करेंगे। स्वप्न का उद्देश्य तो जीवन-प्रणाली का समर्थन और प्रतिपादन तथा तद्रूप भावों को जन्म देना होगा। परन्तु जीवन-प्रणाली को अनुमोदन की क्या आवश्यकता होती है? इसे किधर से भय है? इसे केवल वास्तविकता और साधारण बुद्धि से ही भय हो सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि स्वप्न का उद्देश्य बुद्धि की मांगों के विरुद्ध जीवन-प्रणाली का समर्थन करना है। इससे हमें एक दिलचस्प अन्तर्दृष्टि मिलती है। यदि किसी व्यक्ति के सम्मुख कोई ऐसी समस्या पेश हो जिसे वह साधारण बुद्धि के निर्देशा-

काम बन्द कर दें और नाटकशाला की ओर जायँ। यदि कोई व्यक्ति प्रेम में है तो वह अपने भविष्य की कल्पनाएँ करने लगता है, और यदि उसे सच ही गहरा प्रेम है तो उसकी भविष्य की कल्पना सुखद होगी। कभी-कभी यदि वह हताश अनुभव कर रहा हो तो भविष्य की अन्धकारमय कल्पना करेगा। लेकिन कुछ भी हो वह अपने भावों में तो हलचल पैदा करेगा ही; और उन भावों का ध्यान करके जिन्हें वह पैदा करता है, हम सदा यह बता सकते हैं,कि वह किस प्रकार का व्यक्ति है।

परन्तु यदि भावों के अतिरिक्त स्वप्न से बाकी कुछ भी न बचा हो, तो साधारण समझ-बूझ का क्या होता है? स्वप्न लेना साधारण समझ-बूझ का प्रतिस्पर्द्धी व प्रतिद्वन्द्वी होना है। शायद हम इस बात का पता लगा सकें कि वह लोग जो अपने भावों में धोखा खाना पसन्द नहीं करते और जो वैज्ञानिक ढंग से आगे बढ़ना पसन्द करते हैं अधिक स्वप्न नहीं देखते अथवा बिलकुल ही स्वप्न नहीं देखते। दूसरे, जो साधारण समझ-बूझ से दूर हैं अपनी समस्याओं का हल साधारण और उपयोगी ढंग से नहीं पाना चाहते। साधारण समझ-बूझ तो सहयोग का एक पहलू ही है, और जिन लोगों को सहयोग की भली-भाँति शिक्षा नहीं मिली है वह साधारण समझ-बूझ को नापसन्द करते हैं। उन्हें यही उत्सुकता रहती है कि उनकी जीवन-प्रणाली की जीत हो और उसीका औचित्य सिद्ध हो, वास्तविकता की चुनौती से वह बच निकलना चाहते हैं। हमें आवश्यक रूप में इस निष्कर्ष पर पहुँचना है कि स्वप्न किसी व्यक्ति की जीवन-प्रणाली और उसकी उपस्थित समस्याओं के बीच जीवन-प्रणाली के सम्बन्ध में, विशिष्ट प्रयत्नों की अपेक्षा किये बिना, सेतु बनाने के प्रयत्न के समान है। जीवन प्रणाली ही स्वप्नलोक की स्वामिनी होती है। वह सदा वैसे ही भाव पैदा करेगी

सुमार सुलझाना नहीं चाहता हो तो अपने दृष्टिकोण की सम्पुष्टि वह उन भावों से कर सकता है जो उसके स्वप्नों में पैदा होते हैं।

एक बार तो सम्भव है कि यह हमारे जागरण-काल की दुनिया से विरुद्ध जान पड़े, परन्तु वास्तव में विरोध कहीं नहीं है। ठीक इसी तरह जागते हुए भी हम ऐसे भाव उत्पन्न कर सकते हैं। यदि किसीके सामने कोई कठिनाई पेश हो जिसे वह अपनी साधारण बुद्धि का प्रयोग करके सुलझाना न चाहता हो परंतु अपनी पुरानी जीवन-प्रणाली को ही जारी रखना चाहता हो तब उसका प्रत्येक प्रयत्न उस जीवन-प्रणाली के औचित्य को और उसकी पर्याप्तता को सिद्ध करने की दिशा में होगा। उदाहरण के लिए समझिए कि उसका उद्देश्य सहज तरीकों से, बिना विशेष संघर्ष और काम किये, बिना दूसरों को लाभ पहुँचाए पैसा कमाना है। इसके लिए जुआ खेलना ही उसको सूझता है। उसे मालूम है कि कितने ही लोग जुए में पैसा गंवाकर नंगे हो चुके हैं, परन्तु उसे तो सहज समय बिताना है और उसकी इच्छा सहज तरीके से ही अपने को धनी बनाने की है। इस दशा में वह क्या करेगा? अपने मन में वह रुपए-पैसे से होने वाले लाभों के विषय में विचार कर लेगा। वह कल्पना करता है कि जुए-सट्टे से पैसा बना रहा है। उसने मोटर खरीदी, ऐश्वर्य में रह रहा है, साथी भी उसे अब धनी-मानी समझने लगे हैं। इन कल्पनाओं से वह ऐसे भाव जगा रहा है जो उसे आगे बढ़ा सकेंगे। साधारण सूझ-बूझ से मुख मोड़कर वह जुआ खेलने लगता है। इस प्रकार की बातें दिन-प्रतिदिन की परिस्थितियों में होती रहती हैं। यदि हम काम कर रहे हैं और कोई हमें उस नाटक की बात सुनाता है, जिसे उसने देखा और पसन्द किया है तो हममें भी ऐसे विचार उठने लगते हैं कि

काम बन्द कर दें और नाटक-शाला की ओर जायें। यदि कोई व्यक्ति प्रेम में है तो वह अपने भविष्य की कल्पनाएँ करने लगता है, और यदि उसे सच ही गहरा प्रेम है तो उसके भविष्य की कल्पना सुन्दर होगी। कभी-कभी यदि वह हताशा अनुभव कर रहा हो तो भविष्य की अन्धकारमय कल्पना करेगा। लेकिन क्षुद्र भी हो वह अपने भावों में तो हलचल पैदा करेगा ही; और उन भावों का ध्यान करके जिन्हें वह पैदा करता है, हम सदा यह बता सकते हैं कि वह किस प्रकार का व्यक्ति है।

परन्तु यदि भावों के अतिरिक्त स्वप्न में कोई कुछ भी न बचा हो, तो साधारण समझ-बूझ का क्या होता है? स्वप्न लेना साधारण समझ-बूझ का प्रतिपक्षी व प्रतिद्वन्द्वी होता है। शायद हम इस बात का पता लगा सकें कि वह लोग जो अपने भावों में धोखा खाना पसन्द नहीं करते और जो वैज्ञानिक ढंग से आगे बढ़ना पसन्द करते हैं अधिक स्वप्न नहीं देखते अथवा बिलकुल ही स्वप्न नहीं देखते। दूसरे, जो साधारण समझ-बूझ से दूर हैं अपनी समस्याओं का हल साधारण और उपयोगी ढंग से नहीं पाना चाहते। साधारण समझ-बूझ तो सहयोग का एक पहलू ही है, और जिन लोगों को सहयोग की भली-भाँति शिक्षा नहीं मिली है वह साधारण समझ-बूझ को नापसन्द करते हैं। उन्हें यही उत्सुकता रहती है कि उनकी जीवन प्रणाली की जीत हो और उसीका औचित्य सिद्ध हो, वास्तविकता की चुनौती से वह बच निकलना चाहते हैं। हमें आवश्यक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचना है कि स्वप्न किसी व्यक्ति की जीवन-प्रणाली और उसकी उपस्थित समस्याओं के बीच जीवन-प्रणाली के सम्बन्ध में, विशिष्ट प्रयत्नों की अपेक्षा किये बिना, सेतु बनाने के प्रयत्न के समान है। जीवन प्रणाली ही स्वप्नलोक की [illegible] है सदा वैसे ही भाव पैदा करेगी

सुधार सुलझाना नहीं चाहता हो तो अपने दृष्टिकोण की सम्पुष्टि वह उन भावों में कर सकता है जो उसके स्वप्नों में पैदा होते हैं।

एक बात तो स्पष्ट है कि यह हमारे जागरण-काल की दुनिया से विरुद्ध जान पड़े, परन्तु वास्तव में विरोध कहीं नहीं है। ठीक इसी तरह जागते हुए भी हम ऐसे भाव उत्पन्न कर सकते हैं। यदि किसी के सामने कोई कठिनाई पेश हो जिसे वह अपनी साधारण बुद्धि का प्रयोग करके सुलझाना न चाहता हो परंतु अपनी पुरानी जीवन-प्रणाली को ही जारी रखना चाहता हो तब उसका प्रत्येक प्रयत्न उस जीवन-प्रणाली के औचित्य और उसकी पर्याप्तता को सिद्ध करने की दिशा में होगा। उदाहरण के लिए समझिए कि उसका उद्देश्य सहज तरीकों से, बिना विशेष संघर्ष और काम किये, बिना दूसरों को लाभ पहुँचाए पैसा कमाना है। इसके लिए जुआ खेलना ही उसको सूझा है। उसे मालूम है कि कितने ही लोग जुए में पैसा गँवाकर नष्ट हो चुके हैं, परन्तु उसे तो सहज समय बिताना है और उसकी इच्छा सहज तरीके से ही अपने को धनी बनाने की है। इस दशा में वह क्या करेगा? अपने मन में वह रुपए-पैसे से होने वाले लाभों के विषय में विचार कर लेगा। वह कल्पना करता है कि जुए-सट्टे से पैसा बना रहा है। उसने मोटर खरीदी, ऐश्वर्य में रह रहा है, साथी भी उसे अब धनी-मानी समझने लगे हैं। इन कल्पनाओं से वह ऐसे भाव जगा रहा है जो उसे आगे बढ़ा सकेंगे। साधारण सूझ-बूझ से मुख मोड़कर वह जुआ खेलने लगता है। इस प्रकार की बातें दिन-प्रतिदिन की परिस्थितियों में होती [illegible]। यदि हम काम कर रहे हैं और कोई [illegible] जिसे उसने देखा और [illegible] है कि

उन्हीं घटनाओं को चुन लेते हैं जो हमारी जीवन-प्रणाली से मेल खाती हैं और समकालीन समस्याओं के प्रस्तुत होने पर जीवन-प्रणाली की आवश्यकताओं को व्यक्त करती हैं। इस चुनाव का अर्थ जिन कठिनाइयों में हम अपने को पाते हैं—उस जीवन-प्रणाली के सम्बन्ध के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। स्वप्नों में जीवन-प्रणाली अपनी राह ही चलना चाहती है। कठिनाइयों का वास्तविकता के धरातल पर मुकाबला करने के अर्थ हैं, साधारण समझ-बूझ का प्रयोग। परन्तु इसमें जीवन-प्रणाली बाधा बनकर खड़ी रहती है।

अन्य किन साधनों का स्वप्न में प्रयोग होता है? प्राचीन काल से ही यह देखा गया है, और आज के ज़माने में फ्रायड ने इस बात पर विशेष बल दिया है, कि स्वप्नों का निर्माण अलंकारों और प्रतीकों से होता है। जैसा कि एक मनोवैज्ञानिक ने कहा है, "अपने स्वप्नों में हम कवि होते हैं।" स्वप्न, कविता और अलंकार के स्थान पर सरल सीधी भाषा में व्यक्त क्यों नहीं होता? यदि हम सरल भाषा में बोलें और अलङ्कार तथा प्रतीक का प्रयोग न करें तो हम साधारण समझ-बूझ से नहीं बच सकते। अलङ्कारों और प्रतीकों का दुरुपयोग हो सकता है। उनसे भिन्न-भिन्न अर्थ भी लगाए जा सकते हैं, एक साथ ही यह दो अलग-अलग बातें कह सकते हैं, जिनमें से सम्भव है कि एक बिलकुल असत्य हो। उनसे अत्युक्तिपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, उनका प्रयोग भावों को जमाने में हो सकता है। हम दैनिक जीवन में भी ऐसा देखते हैं। जब हम किसीकी भूल जताना चाहते हैं तो कहते हैं, "बच्चा मत बनो"। हम पूछते हैं—"तुम रोते क्यों हो? क्या तुम औरत हो?" जब हम अलङ्कारों का प्रयोग करते हैं तो कुछ असा-सङ्गिक बात, कुछ ऐसी बात जिसका सम्बोधन केवल भावों के

जिनकी कि एक व्यक्ति को आवश्यकता होती है। स्वप्न में हमें कोई भी ऐसी बात नहीं मिलेगी जो किसी व्यक्ति के दूसरे लक्षणों और विशिष्टताओं में न मिल सके। चाहे हम स्वप्न देखें अथवा नहीं, हम अपने प्रश्नों के प्रति वैसा ही व्यवहार करेंगे, परन्तु स्वप्न जीवन-प्रणाली को समर्थन देने और उसके औचित्य को सिद्ध करने में सहायक होते हैं।

यदि यह सत्य है तो स्वप्नों की समझ की दिशा में हम एक नया और महत्वपूर्ण कदम उठाते हैं। स्वप्नों में हम अपने को धोखा दे रहे होते हैं। प्रत्येक स्वप्न का अर्थ अपने को मदहोश करना, अपने को आत्म-सम्मोहित (सेल्फ-हिप्नासिस) करना होता है। इसका उद्देश्य केवल ऐसी चित्तावस्था बनाना है जिसमें कि हम किसी परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार हैं। हमें इसका ठीक रूप उसी व्यक्तित्व में दीखता है जो कि हम रोज की दुनिया में देखते हैं, परन्तु हमें इसे मन के कारखाने में उन भावों को गढ़ते हुए, जिनका प्रयोग कि उसने अगले दिन करना है, देखना चाहिए। यदि हमारी विवेचना ठीक है तो स्वप्न की रचना में, उन साधनों में भी, जिनका कि प्रयोग इसमें होता है, हम आत्मवञ्चना पा सकेंगे।

हम क्या देखते हैं ? पहले तो हमें कुछ झाँकियों, घटनाओं और आपबीतियों का चुनाव दीख पड़ता है। इस चुनाव के विषय में हम पहले भी लिख चुके हैं। जब कोई व्यक्ति अपने बीते समय पर दृष्टि डालता है तो वह कुछ झाँकियों और घटनाओं का समुच्चय बना लेता है। हमने देखा है कि यह चुनाव विग्रहात्मक होता है, वह व्यक्ति उन्हीं घटनाओं को अपनी स्मृति में से चुनता है जो श्रेष्ठता के उसके वैयक्तिक ध्येय का समर्थन कर सकती हैं। उसका ध्येय ही उसकी स्मृति पर प्रभुत्व रखता है। इसी प्रकार एक स्वप्न के निर्माण में हम

रता है और अब उसका डरना यही अधिक सङ्गत हो जाता है। अथवा उसे स्वप्न आता है कि वह किसी खाई के किनारे खड़ा है और उसमें गिरने से बचने के लिए उसे पीछे भागना चाहिए। उसने ऐसे भाव अवश्य पैदा करने हैं जो उसे परीक्षा से बचने मे सहायता दें, ताकि उसकी परीक्षा न हो सके। परीक्षा की गहरी खाई से तुलना करके वह अपने आपको धोखा देता है। इसी सम्बन्ध में हम स्वप्नों में एक दूसरा साधन भी प्रायः प्रयुक्त होता पाते हैं। वह यह है कि एक समस्या ली जाती है, उसे काट-छाँटकर इस तरह परिमित कर लिया जाता है कि मूल समस्या का एक अंश ही शेष रह जाय। इस शेष को तब अलङ्कार रूप में व्यक्त किया जाता है और इस तरह बरता जाता है जैसे कि यही मूल समस्या हो। उदाहरण के लिए, एक दूसरा विद्यार्थी जो अधिक साहसी और भविष्य के प्रति अधिक सजग हो अपने कर्तव्य को पूरा करना और परीक्षा में बैठना चाहता है। फिर भी अपने इस दृष्टिकोण का समर्थन तो वह चाहता ही है, और साथ में वह अपने को पुनराश्वासन देना भी चाहता है। उसकी जीवन-प्रणाली इसके लिए उसे मजबूर करती है। परीक्षा के दिन से पहली रात को उसे स्वप्न आता है कि वह एक पहाड़ की चोटी पर खड़ा है। उसकी परिस्थिति का चित्र बड़ा सादा कर दिया गया है। उसके जीवन की विविध परिस्थितियों का केवल एक छोटा-सा भाग ही प्रतिबिम्बित हुआ है। चाहे समस्या कितनी बड़ी हो, उसके कितने ही पहलुओं को छोड़कर और अपनी सफलता की सम्भावना पर जोर देकर ही वह ऐसे भाव जागृत कर लेता है जो उसे सहायक हो सकें। अगली प्रातः जब वह उठता है तो अपने आपको प्रसन्न, तरोताजा और पहले से अधिक साहसी अनुभव करता है। उसके लिए जिन कठिनाइयों का सामना करना आवश्यक

[illegible] हो, पारस्परिक में भय हो जाता है। एक कवि एक मनुष्य [illegible] क्रुद्ध होने पर कहता है—"यह मन यह पीड़ा है, इसे मार देना चाहिए।" वह अपने इस अलङ्कार में अपने क्रोध [illegible] असमर्थता को प्रकट करता रहा है। अलङ्कार भावों के रूप [illegible] प्रकट करते हैं। परन्तु उनके प्रयोग में हम ध्यान रखने की [illegible] सकते हैं। [illegible] का सेना पर [illegible] में जब यह [illegible] वर्णन किया है कि वह शेरों की तरह मैदान [illegible] गए तो उनके एक ओजपूर्ण चित्र हमारे सामने रखता। क्या हम यह मान लें कि वह नवयुवक ही इस प्रकार, जैसे दूसरे सिपाहियों के लिए में लिखना चाहता था, कि वह किस प्रकार मैदान में कूद पड़ते थे। ऐसा नहीं है, वह तो चाहता था कि इन सिपाहियों को शेर समझें। हम जानते हैं कि वास्तव में वह शेर नहीं थे, परन्तु कवि यदि यह वर्णन करता कि वह किस तरह हाँफकर साँस लेते और पसीने से तर होते थे, किस तरह वह हिम्मत बाँधते थे और खतरों से बचते थे, उनके अस्त्र-शस्त्र कितने पुराने थे और इसी प्रकार के हजारों वर्णनों में पड़ता तो हम इतना प्रभावित नहीं होते। अलङ्कारों का प्रयोग तो सौंदर्य, कल्पना और चमत्कार के लिए होता है। लेकिन इस बात पर हमने जोर देना ही है कि अलङ्कार और प्रतीकों का ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रयोग जिसकी जीवन-प्रणाली गलत हो, हमेशा खतरनाक होगा।

एक विद्यार्थी ने परीक्षा में बैठना है। समस्या तो सीधी है और इसका सामना उसे समझ-बूझ और साहस से करना चाहिए। परन्तु उसकी जीवन-प्रणाली यदि ऐसी है कि वह हर समस्या के सामने से भागना चाहता है तो वह स्वप्न देख सकता है कि वह किसी लड़ाई में लड़ रहा है। वह इस सीधी-सादी समस्या को बढ़ा-चढ़ाकर अलङ्कार के रूप में चित्रित

करता है और अब उसका डरना कहीं अधिक सङ्गत हो जाता है। अथवा उसे स्वप्न आता है कि वह किसी खाई के किनारे खड़ा है और उसमें गिरने से बचने के लिए उसे पीछे भागना चाहिए। उसने ऐसे भाव अवश्य पैदा करने हैं जो उसे परीक्षा में बचने में सहायता दें, ताकि उसकी परीक्षा न हो सके। परीक्षा की गहरी खाई से तुलना करके वह अपने आपको धोखा देता है। इसी सम्बन्ध में हम स्वप्नों में एक दूसरा साधन भी प्रायः प्रयुक्त होता पाते हैं। वह यह है कि एक समस्या ली जाती है, उसे काट-छाँटकर इस तरह परिमित कर लिया जाता है कि मूल समस्या का एक अंश ही शेष रह जाय। इस शेष को तब अलङ्कार रूप में व्यक्त किया जाता है और इस तरह बरता जाता है जैसे कि यही मूल समस्या हो। उदाहरण के लिए, एक दूसरा विद्यार्थी जो अधिक साहसी और भविष्य के प्रति अधिक सजग हो अपने कर्तव्य को पूरा करना और परीक्षा में बैठना चाहता है। फिर भी अपने इस दृष्टिकोण का समर्थन तो वह चाहता ही है, और साथ में वह अपने को पुनराश्वासन देना भी चाहता है। उसकी जीवन-प्रणाली इसके लिए उसे मजबूर करती है। परीक्षा के दिन से पहली रात को उसे स्वप्न आता है कि वह एक पहाड़ की चोटी पर खड़ा है। उसकी परिस्थिति का चित्र बड़ा सादा कर दिया गया है। उसके जीवन की विविध परिस्थितियों का केवल एक छोटा-सा भाग ही प्रतिबिम्बित हुआ है। चाहे समस्या कितनी बड़ी हो, उसके कितने ही पहलुओं को छोड़कर और अपनी सफलता की सम्भावना पर जोर देकर ही वह ऐसे भाव जागृत कर लेता है जो उसे सहायक हो सकें। अगली प्रातः जब वह उठता है तो अपने आपको प्रसन्न, तरोताजा और पहले से अधिक साहसी अनुभव करता है। उसके लिए जिन कठिनाइयों का सामना करना आवश्यक

हैं, उन्हें तुच्छ दरशाने में वह सफल हो गया है। इस सचाई के बावजूद भी, कि वह अपने आपको फिर से आश्वासन दे सका है, वह वास्तव में अपने को धोखा ही देता रहा है। समूची समस्या का सामना वह साधारण समझ-बूझ के तरीके से नहीं करता रहा, केवल आत्मविश्वास की चित्तावस्था को ही पैदा करने में व्यस्त रहा है।

इस तरह भावों का पैदा करना कोई असाधारण घटना नहीं है। एक आदमी जो पानी के नाले के ऊपर से कूदना चाहता है, कूदने से पहले शायद एक, दो, तीन गिने। क्या वास्तव में यह बहुत जरूरी है कि वह एक,दो,तीन गिने ? क्या कूदने और एक, दो, तीन गिनने में कोई कूट सम्बन्ध है ? ऐसा तो लेशमात्र भी नहीं है। किन्तु वह भावों को चेतना देने और अपनी शक्ति का संचय करने के लिए इस तरह गिनता है। हमने अपने मानव-मन में किसी भी प्रकार की जीवन-प्रणाली की कल्पना करने,उसे सुदृढ़ रूप देने, और मजबूत बनाये रखने के सब साधन जुटा रखे हैं। उन साधनों में सर्वोपरि महत्त्व का साधन हमारी भाव जगाने की सामर्थ्य है। इस काम में हम रात-दिन जुटे रहते हैं, परन्तु कदाचित् इसका स्पष्टतर रूप तो रात को ही सुस्पष्ट होता है।

हम जिस प्रकार अपने आपको धोखा देने के अभ्यस्त हैं, इसका एक उदाहरण मैं अपने ही एक स्वप्न का वर्णन करके देना चाहता हूँ। मैं युद्ध के दिनों में स्नायुरोग से आक्रान्त सिपाहियों के एक हस्पताल का प्रमुख था। जब मेरी भेंट ऐसे सिपाहियों से होती थी जोकि युद्धभूमि में नहीं जाना चाहते थे तो मेरी यथासम्भव कोशिश यही होती थी कि कोई हल्‌ [illegible] ैंप कर उन्हें उनकी चिन्ताओं से [illegible]
तनाव (टेंशन) में काफी

ा यह तरीका काफी सफल सिद्ध होता था। एक दिन मेरे
त एक ऐसा सिपाही आया जिसके शरीर की गठन और मज-
ो बेजोड़ थी। वह बहुत निराश-सा हो रहा था, उसका परी-
ा करते समय मैं सोचता रहा कि ऐसे स्वस्थ रोगी का क्या
ाचार है ? मेरे बस की बात होती तो मैं अपने पास आने
ले हर रोगी को घर भेज देता। परन्तु मेरे प्रत्येक उपचार-
र्देश का निरीक्षण मुझसे ओहदे में बड़े एक अफसर किया
रते थे। इस प्रकार मेरी सहानुभूति और परोपकार की
ावना को उचित सीमा में ही रहना पड़ता था। इस सिपाही के
ाषय में किसी निश्चय पर पहुंचना सरल न था, परन्तु अवसर
ा जाने पर मैंने उससे कहा—"तुम स्नायुरोगी जरूर हो, किन्तु
ाथ-ही-साथ स्वस्थ और मजबूत भी हो। मैं करने को तुम्हें
पेक्षातर आसान काम दूँगा, जिससे कि मोर्चे पर तुम्हें न
ाना पड़े।"

उस सिपाही ने बहुत दीनता प्रकट की और उत्तर दिया—
मैं एक निर्धन विद्यार्थी हूँ और अपने माता-पिता की जीविका
लाने के लिए मुझे अध्ययन का काम करना पड़ता है। यदि
ं यह काम जारी न रख सका तो उन्हें भूखों मरना पड़ेगा।
यदि मैं उनकी सहायता न कर सका तो वह दोनों मर
जायँगे।" मैंने सोचा कि इस व्यक्ति के लिए अपेक्षातर और
भी सरल काम खोजना चाहिए। उचित है कि किसी दफ्तर
में काम करने के लिए इसको अपने नगर को ही वापस
भेज दिया जाय। मुझे डर था कि यदि इसके बारे में मैंने घर
लौटाने की ही सम्मति दी तो मेरा अफसर मुझ पर क्रुद्ध हो
जायगा और सिपाही को मोर्चे पर भेजने की आज्ञा दे देगा।
अन्त में ईमानदारी से जो कुछ भी सम्भव था, मैंने सिपाही के
लिए कर देने का निश्चय किया। मैंने उसे यह साक्षी-पत्र देने का

निश्चय किया कि यह सिपाही केवल पहरेदारी के कर्तव्यों के लिए उपयुक्त है। रात को जब मैं घर पहुँचा और सोया तो मैंने एक भीषण स्वप्न देखा। स्वप्न में मुझे दीख पड़ा कि मैं एक हत्यारा हूँ, और यह सोचने की कोशिश में कि मैंने किसकी हत्या की है अन्धेरी और तंग गलियों में भागता फिर रहा हूँ। मुझे मृत व्यक्ति की कुछ याद नहीं आ रही थी परन्तु कुछ इस प्रकार का अनुभव हो रहा था—"क्योंकि मैं हत्या कर बैठा हूँ अब मेरा कुछ नहीं बन सकता। मेरी जिन्दगी ही गलत हो गई है। अब सब-कुछ समाप्त हो गया है।" इस प्रकार मैं स्वप्न में निष्क्रिय हो रहा और पसीना-पसीना हो उठा।

नींद से उठने पर मेरा पहला विचार था—"मैंने किसकी हत्या की है?" तभी मुझे अनायास यह सूझा—"यदि इस तरुण सिपाही को मैं किसी दफ्तर में काम न दिलाऊँगा तो शायद इसे मोर्चे पर ही भेज दिया जायगा और यह मारा जायगा। तब मैं ही हत्यारा ठहरूँगा।" आपने देखा कि मैं खुद को धोखा देने के लिए कैसा वातावरण पैदा कर लिया था मैं हत्यारा नहीं साबित हुआ था और यदि उसकी मृत्यु दुर्घटना हो भी जाती, तब भी मैं अपराधी नहीं ठहराया जा सकता था। परन्तु मेरी जीवन-प्रणाली मुझे इस सम्भावना का खतरा उठाने की आज्ञा नहीं देती थी। मैं डाक्टर हूँ, जीवन को बचाना मेरा कर्तव्य है, उसे खतरे में डालना नहीं। मुझे फिर ध्यान आया कि मैं यदि इसे कोई सरल-सा काम सौंपूँगा तो मुझसे बड़ा अफसर इसे मोर्चे पर भेज देगा और इससे स्थिति बिगड़ जायगी। तब मुझे सूझा कि यदि इसकी सहायता ही करना चाहता हूँ तो रास्ता यही है कि केवल सहज बुद्धि के नियमों का पालन करूँ और ऐसा करते हुए अपनी जीवन-प्रणाली की परवाह न करूँ। तदनुसार मैंने उसे पहरे

दारी के किसी पद के लिए योग्य होने का प्रमाण पत्र दे दिया। बाद के घटना-क्रम ने इस सत्य की पुष्टि की कि सदा सहज-बुद्धि के अनुसार चलना ही उचित सिद्ध होता है। मुझसे बड़े अफसर ने मेरे प्रस्ताव को पढ़ा और उसे रद्द कर दिया। मैंने सोचा कि यह अफसर अब अवश्य इस सिपाही को मोर्चे पर भेज देगा। शायद यही उचित था कि मैं किसी दफ्तरी-पद के लिए उसकी सिफारिश कर देता; परन्तु मेरे अफसर ने आज्ञा दी—"छ: मास के लिए इसे किसी दफ्तर में काम करने के लिए भेजा जाय।" पीछे पता चला कि सिपाही से नर्म बर्ताव करने के लिए अफसर को रिश्वत दी गई थी। उस नवयुवक ने जिन्दगी में एक दिन भी शिक्षक का काम नहीं किया था और जो कुछ भी बयान दिया था वह सब झूठा था। उसने अपनी कहानी इसलिए गढ़ी और सुनाई थी ताकि मैं उसे कोई हल्का-सा काम दे सकूँ और रिश्वत खानेवाला अफसर मेरी सिफारिश पर हस्ताक्षर कर सके। उस दिन से मैंने निश्चय किया कि स्वप्न देखना ही त्याग देना चाहिए।

यह सत्य ही, कि स्वप्नों की सृष्टि हमें धोखा देने और भ्रमित करने के लिए होती है, इस बात का कारण है कि वे बहुत ही कम समझे जाते हैं; यदि हम स्वप्नों का अभिप्राय समझने लगें तो वह हमें धोखा नहीं दे सकेंगे। इस दशा में यह विशेष विचार और भावनाएँ भी पैदा न कर सकेंगे। तब हम सहज-बुद्धि के अनुसार आगे बढ़ेंगे और अपने स्वप्नों की प्रेरणाओं को मानने से इनकार कर देंगे। यदि स्वप्न समझे जाने लगें तो वह अपना अभिप्राय ही खो बैठेंगे। स्वप्न तो वर्तमान की वास्तविक समस्याओं और जीवन-प्रणाली के बीच सेतु के समान होते हैं; परन्तु जीवन-प्रणाली को पुष्टि और समर्थन की आवश्यकता नहीं होती

चाहिए। उसका सम्बन्ध तो सीधा वास्तविकता से रहना चाहिए।
स्वप्न कितने ही प्रकार के होते हैं, और प्रत्येक स्वप्न जीवन
प्रणाली के उस भाग की ओर संकेत करता है जहां कि
व्यक्ति को किसी विशिष्ट परिस्थिति का सामना होने पर
सहायता व समर्थन की आवश्यकता महसूस होती है। इ
लिए स्वप्नों का अर्थ-निर्देशन सदैव व्यक्तिगत होता है।
प्रतीक रूप अलंकारों व बाह्य चिह्नों को किसी निश्चित नियम
पद्धति के अनुसार अभिव्यक्त करना असम्भव है। स्वप्न कि
व्यक्ति की अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अभिप्राय से
उसकी अपनी जीवन-प्रणाली की सृष्टि ही होते हैं। इस
बावजूद भी यदि मैं संक्षिप्त रूप में स्वप्नों के कुछ विशेष प्रका
का वर्णन करूँगा तो उनका अर्थ लगाने के विशेष नि
जताने के लिए नहीं, परन्तु उन्हें समझने और उनका अर्थ
लगाने में सहायता देने के उद्देश्य से ही करूँगा।

कितने ही लोग उड़ने के स्वप्न देखा करते हैं। जैसा कि
अन्य स्वप्नों में, इनको समझने का साधन भी उन विचा
में निहित है जिनको कि इस प्रकार के स्वप्न पैदा करते हैं।
ऐसे स्वप्न अपने पीछे हलकेपन और उत्साह की भावना
छोड़ जाते हैं। यह नीचे से जैसे ऊपर की ओर खींचते हैं।
इन स्वप्नों द्वारा निर्मित चित्रों में कठिनाइयों का पार पा
और श्रेष्ठता के ध्येय की ओर बढ़ना सरल करके दिखाया जा
इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि ऐसे स्वप्न
वाला व्यक्ति उत्साही, आगे बढ़ने का इच्छुक और
क्षाओं से भरा हुआ है। वह सोते हुए भी आकांक्षाओं
छा नहीं छुड़ा सकता। इन स्वप्नों से कुछ ऐसी समस्या
होती है—"मैं आगे बढ़ूँ या नहीं?" और उत्त
। जाता है—"मेरे मार्ग में कोई बाधाएँ नहीं हैं।"

ऐसे लोग बहुत कम होंगे जिन्हें स्वप्न में गिरने का अनुभव नहीं हुआ। यह बात आश्चर्यजनक है। इससे पता चलता है कि मनुष्य का मन कठिनाइयों को पार करने की कोशिश से भी अधिक पराजय के भय और आत्म-सुरक्षा के विचारों में तल्लीन रहता है। इस बात का ध्यान रखने से कि हमारी परम्परा से चली आ रही शिक्षा और अभ्यास बच्चों को सतर्क करने और उन्हें अपने बचाव के लिए सदैव प्रेरित करते रहने की है, यह तथ्य साफ तौर पर समझ में आ जाता है। बच्चों को हमेशा धमकाया जाता है—"कुर्सी पर मत चढ़ो, कैंची को मत छुओ, आग से दूर रहो।" उनको सदा ही झूठे और निरर्थक खतरे घेरे रहते हैं। निःसन्देह इन बातों में कुछ वास्तविक भय भी रहता है। परन्तु एक व्यक्ति को कायर बना देने से उसे इन वास्तविक खतरों का मुकाबला करने के लिए तैयार होने में कभी सहायता नहीं मिलेगी।

जब आम तौर पर लोग यह स्वप्न देखने लगें कि उन्हें पक्षाघात हो गया है अथवा वह किसी गाड़ी को वक्त पर नहीं पकड़ सके, तो साधारणतया इसका अर्थ यह होता है— "यदि यह समस्या किसी प्रकार मेरे प्रयत्नों के बिना ही सुलझ जाय तो मुझे प्रसन्नता होगी। मुझे कुछ बचकर चलना चाहिए, देर से पहुँचना चाहिए ताकि सामना न होने पाए। गाड़ी को निकल जाने देना चाहिए।" कई लोगों को परीक्षाओं के स्वप्न दीखा करते हैं। कभी-कभी इतनी बड़ी उम्र में परीक्षा देते हुए अथवा किसी ऐसे विषय में परीक्षा देते हुए जिसमें कि वह बरसों पहले उत्तीर्ण हो चुके हैं, उन्हें अचम्भा होता है। कुछ व्यक्तियों के लिए ऐसे स्वप्न का अर्थ होगा—"आपके सामने जो समस्या प्रस्तुत है उसका सामना करने के लिए

आप तैयार नहीं हैं।" कुछ भिन्न प्रकार के लोगों के लिए उनका अर्थ होगा— "पहले भी आप ऐसी परीक्षा में सफल हो चुके हैं, प्रस्तुत परीक्षा में भी आप सफल हो जायेंगे।" एक व्यक्ति स्वप्न में जिन चिह्नों और प्रतीकों का इस्तेमाल करता है वह दूसरे व्यक्ति के चिह्नों व प्रतीकों के समान कभी नहीं होते। स्वप्नों के विषय में ध्यान देने योग्य मुख्य बात भावना का अवशेष और उसकी समूची जीवन-प्रणाली से तद्रूपता है।

बत्तीस वर्ष की आयु की एक स्त्री, जो कि स्नायुरोग में आक्रान्त थी, मेरे पास उपचार के लिए आई। अपने परिवार में वह दूसरी सन्तान थी और प्रायः दूसरी सन्तानों की तरह आकांक्षापूर्ण भी थी। उसकी कोशिश हमेशा प्रथम रहने की और अपनी सब समस्याओं को नितान्त त्रुटिहीन तरीकों से सुलझा लेने की होती थी। वह जब मेरे पास आई तो उसका स्नायु-जाल बिखर चुका था। उम्र में अपने से बड़े एक विवाहित पुरुष के साथ उसका प्रेम-सम्बन्ध हुआ। वह प्रेमी अपने व्यापारी धन्धे में असफल ठहरा था। इसकी इच्छा उससे विवाह करने की थी; परन्तु वह पुरुष अपनी स्त्री से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सका था। इस स्त्री को स्वप्न दीखा कि एक व्यक्ति ने, जिसे कि इसने अपना मकान नगर से बाहर जाने के दिनों में किराए पर दिया था, मकान में आते ही विवाह कर लिया, परन्तु वह कमाता कुछ भी नहीं था। वह न तो ईमानदार और न ही पुरुषार्थी व्यक्ति था। क्योंकि वह मकान का किराया न चुका सका, उसे मजबूर हो निकाल बाहर करना पड़ा। पहली दृष्टि में ही हमें स्पष्ट हो जाता है कि इस स्वप्न का इस स्त्री की वर्तमान समस्या से कुछ सम्बन्ध है। वह स्त्री इस बात पर सोच-विचार कर रही थी कि ऐसे

व्यक्ति से, जिसका कारोबार नष्ट हो चुका हो, विवाह करना चाहिए अथवा नहीं ! उसका प्रेमी निर्धन और उसके पालन-पोषण करने में असमर्थ था। इस तुलना को महत्त्व देने वाली बात यह है कि एक बार वह इसे भोजन खिलाने के लिए अपने साथ एक होटल में ले गया जब कि भोजन का मूल्य चुकाने के लिए उसकी जेब में पूरे पैसे भी नहीं थे। इस स्वप्न का प्रभाव विवाह के विरुद्ध भाव में स्पष्ट है। यह स्त्री महत्त्वाकांक्षी स्त्री है और किसी निर्धन व्यक्ति से सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहती। यह एक अलंकार का उपयोग करके अपने से प्रश्न करती है—"यदि उसने मेरा मकान किराए पर लिया और किराया न दे सका तो मैं ऐसे किराएदार का क्या करूँ ?" उत्तर है—"इसे मकान से बाहर निकलना ही होगा।"

परन्तु यह विवाहित व्यक्ति तो उसका किराएदार नहीं है और न ही उसकी तुलना उस किराएदार से उचित रूप में की जा सकती है। एक पति को जो अपने परिवार के पालन में अपने आपको असमर्थ पाए, उस किराएदार के समान नहीं माना जा सकता जो कि किराया नहीं चुका सकता। फिर भी अपनी समस्या से पल्ला छुड़ाने के लिए और अपनी जीवन-प्रणाली का अधिक आश्वासन से अनुकरण करने के उद्देश्य से इस स्त्री ने यह भाव अपना लिया है—"मैं उससे विवाह नहीं करूँगी", और इस रीति से वह सारी समस्या के प्रति सहज-बुद्धि का व्यवहार करने की जरूरत से बच निकलती है तथा इसके कुछ भाग को ही चुन लेती है। साथ-ही-साथ वह प्रेम और विवाह की सम्पूर्ण समस्या को ही तुच्छ और लघु कर देती है, जैसे कि यह समस्या पर्याप्त रूप में इसी प्रकार से व्यक्त हो सकती हो—'एक व्यक्ति मेरा मकान किराए

पर लेता है, यदि वह किराया नहीं दे सकता तो उसे निकाल बाहर करना चाहिए।"

वैयक्तिक मनोविज्ञान के तरीके से उपचार की दिशा सदा ही जीवन की समस्याओं का मुकाबला करने के लिए व्यक्ति में अधिकाधिक उत्साह पैदा करने की ओर होती है। इसलिए यह समझना आसान होगा कि उपचार के दौरान में स्वप्नों में परिवर्तन हो जायगा और उनसे पहले से अधिक विश्वास का दृष्टिकोण झलकने लगेगा। एक निराश व उदास रहने वाली स्त्री का उपचार समाप्त होने से पहले का अन्तिम स्वप्न इस प्रकार था—"मैं अकेली ही एक बेंच पर बैठी थी। एकाएक एक भारी बर्फीला तूफान उठ आया। सौभाग्यवश मैं उससे बच गई क्योंकि मैं जल्दी ही अपने पति के पास मकान के अन्दर चली गई। तब मैंने एक अखबार के विज्ञापनों में एक जगह खोजने में पति की सहायता की।" यह रोगिणी अपने स्वप्न का अर्थ समझने में स्वयं भी समर्थ हुई। इससे उसकी अपने पति के प्रति समझौते की भावना स्पष्ट होती है। प्रारम्भ में वह उससे घृणा किया करती थी और अच्छे ढंग के जीविकोपार्जन में उसकी कमजोरी तथा उत्साहहीनता की कड़वाहट से शिकायत किया करती थी। उसके इस स्वप्न का अर्थ है—"खतरे का अकेले सामना करने से बेहतर है कि मैं अपने पति के पास ही रुकी रहूँ।" चाहे हम रोगिणी से परिस्थितियों के प्रति उसके दृष्टिकोण से सहमत हों अथवा नहीं, उस ढंग से जिससे कि वह अपने पति और अपने विवाह के प्रति समझौते का रवैया अपना लेती है, वह मन्त्रणा पर्याप्त मात्रा में झलक उठती है जो कि चिन्तातुर माँ-बाप अपनी सन्तान को देने के प्रायःतर अभ्यासी हुआ करते हैं। अकेले रहने के खतरों पर अधिक तूल दिया गया है और फिर भी यह हिम्मत और आजादी से सह-

योग करने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं है।

मेरे हस्पताल में एक दस वर्ष के लड़के को लाया गया। उसके स्कूल के अध्यापक की शिकायत थी कि दूसरे लड़कों से उसका व्यवहार कमीना और दुष्टतापूर्ण है। वह स्कूल में चीजें चुराता था और उन्हें दूसरे लड़कों के डेस्कों में डाल देता था ताकि उन्हें बुरा-भला कहा जाय। इस तरह का व्यवहार तभी अपेक्षित हो सकता है जबकि कोई बच्चा, दूसरे बच्चों को अपने तल तक गिरा लेने की जरूरत महसूस करे। उसका प्रयत्न होता है कि दूसरे अपमानित हों, यह सिद्ध हो जाय कि वह कमीने और दुष्ट हैं, वह स्वयं ऐसा नहीं। यदि उसका यही साधन है तो हम अनुमान लगा सकते हैं कि उसे ऐसी शिक्षा अपने परिवार में ही मिली होगी। घर में कोई ऐसा व्यक्ति अवश्य होगा, जिसे वह अपराधी ठहराना चाहता है। जब वह दस बरस का था तो उसने बाजार में चलती हुई एक गर्भवती स्त्री पर पत्थर फेंके और इससे मुसीबत में फंसा। दस वर्ष की आयु में गर्भ क्या होता है शायद उसे यह मालूम होगा। हम इस बात का सन्देह कर सकते हैं कि वह गर्भावस्था को पसन्द नहीं करता और हमें देखना चाहिए कि उसका कोई छोटा भाई या बहन तो नहीं है जिसका जन्म कि उसे नहीं रुचा। अध्यापक की रिपोर्ट में उसे "पड़ोसियों के लिए अत्यधिक दुखदाई" कहा गया है। वह अपने सहपाठियों को तंग करता है, उन्हें खिझाता और उनके बारे में अपवाद फैलाता है। छोटी लड़कियों का वह पीछा करता है और उन्हें मारता है। अब हम यह बताने में समर्थ हैं कि उसकी एक छोटी बहन है, जिसके साथ प्रतियोगिता में वह जूझा-सा रहता है।

हमें बताया जाता है कि वह दो सन्तानों में बड़ा है। उसकी एक छोटी बहन है, जिसकी उम्र चार बरस की है। इसकी माँ

करता है, कि वह अपनी छोटी बहन को प्यार करता है और हमेशा ही उसके प्रति अच्छा व्यवहार करता है। यह बात हमारे विश्वास में नहीं आ रही; यह असम्भव है कि ऐसा लड़का अपनी छोटी बहन को प्यार करे। बाद में हम देखेंगे कि हमारा सन्देह निर्मूल नहीं है। माता का यह दावा भी है कि उसके और उसके पति के परस्पर सम्बन्ध आदर्शपूर्ण और यथोचित हैं। यह तो लड़के के लिए बड़ी दयनीय बात है। बाह्य तौर पर तो ऐसा जान पड़ता है कि उसके माता-पिता उसके दोषों के लिए उत्तरदायी नहीं हैं, यह दोष उसकी अपनी दुष्ट प्रकृति से, दुर्भाग्य से, अथवा शायद उस वंश के किसी आदि पुरुष के कारण उसमें आ गए हैं। हम प्रायः ऐसे दुर्घटनाओं के विषय में सुनते रहते हैं; कितने बढ़िया माता-पिता और कैसी भयानक सन्तान! ऐसी दुर्घटनाओं की साक्षी अध्यापकों, मनोवैज्ञानिकों, वकीलों और जजों से मिलती रहती है। हाँ, ऐसे "आदर्श" दम्पति खुद ही बच्चों के विकास में इस प्रकार बाधा बन सकते हैं: यदि बच्चा देखे कि उसकी माता उसके पिता के प्रति ही अनुरक्त व उसकी अनन्य भक्तिनी है तो इससे वही खीझ सकता है। उसका यत्न होता है कि माता के ध्यान पर उसका एकाधिकार हो, उसके किसी भी दूसरे के प्रति प्रेम-प्रदर्शन को बुरा मना सकता है। ऐसी स्थिति में हम क्या करें जबकि प्रेम-पूर्ण विवाह सन्तान के लिए बुराई का कारण बने और कलह पूर्ण विवाह और भी भयङ्कर सिद्ध हों? हमें शुरू से ही कोशिश करनी चाहिए कि बच्चा सहयोगी बने; वास्तव में उसे विवाह-जनित सम्बन्धों का हिस्सा ही बना लेना चाहिए। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि यह केवल माता अथवा केवल पिता से ही चिपटा न रहे। हम जिस लड़के के विषय में विचार कर रहे हैं वह लाड-प्यार से बिगड़ा बच्चा है, वह अपनी माता

का ध्यान हमेशा अपनी ओर बनाये रखना चाहता है और जब कभी वह समझता है कि उसकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है, शरारतें करने लगता है।

एक बार फिर हमारे विचारों की पुष्टि होने वाली है। माता कभी अपने हाथों से इस लड़के को सज़ा नहीं देती। वह लड़के के पिता के घर लौटने की प्रतीक्षा करती है कि वह आये और उसे दण्ड दे। शायद इसके लिए वह अपने को कमजोर समझती है। वह समझती है कि कोई पुरुष ही आज्ञाएँ दे सकता है और आज्ञापालन करा सकता है, केवल पुरुष में ही दण्ड दे सकने योग्य दृढ़ता हो सकती है। शायद वह चाहती है कि बच्चा उसीकी ओर आकृष्ट रहे और उसे गंवा बैठने से डरती है। दोनों हालतों में वह बच्चे को पिता में दिलचस्पी लेने अथवा उसके प्रति सहयोग से दूर हो जाने की शिक्षा दे रही है। इस प्रकार स्वाभाविक है कि दोनों में कलह-विग्रह का विकास हो जाय। हमें बताया जाता है कि पिता अपनी स्त्री व अपने परिवार में अनुरक्त है, परन्तु दिन का काम समाप्त कर लेने के बाद लड़के के कारण ही घर लौटने से घृणा करता है। वह काफी कठोरता से उसे दण्ड देता और अक्सर उसे मारा करता है। कहा जाता है कि लड़का पिता को नापसन्द नहीं करता। यह बात भी असम्भव है। लड़का कमजोर मन का व्यक्ति नहीं है। उसने अपने भावों को छिपाकर रखना खूब सीख लिया है।

वह अपनी छोटी बहन को प्यार करता है, परन्तु उसके साथ नरमी से खेलता नहीं; प्रायः उसे चपत लगाता अथवा ठोकर मार देता है। वह भोजन करने के कमरे में साधारण खाट पर सोता है जबकि उसकी बहन अपने माता-पिता के कमरे में कोमल चारपाई पर सोती है। अब हम यदि इस

कहती है, कि वह अपनी छोटी बहन को प्यार करता है और हमेशा ही उसके प्रति अच्छा व्यवहार करता है। यह बात हमारे विश्वास में नहीं आ रही; यह असम्भव है कि ऐसा लड़का अपनी छोटी बहन को प्यार करे। बाद में हम देखेंगे कि हमारा सन्देह निर्मूल नहीं है। माता का यह दावा भी है कि उसके और उसके पति के परस्पर सम्बन्ध आदर्शपूर्ण और यथोचित हैं। यह तो लड़के के लिए बड़ी दयनीय बात है। बाह्य तौर पर तो ऐसा जान पड़ता है कि उसके माता-पिता उसके दोषों के लिए उत्तरदायी नहीं हैं, यह दोष उसकी अपनी दुष्ट प्रकृति से, दुर्भाग्य से, अथवा शायद उस वंश के किसी आदि पुरुष के कारण उसमें आ गए हैं। हम प्रायः ऐसे दम्पतियों के विषय में सुनते रहते हैं; कितने बढ़िया माता-पिता और कैसी भयानक सन्तान! ऐसी दुर्घटनाओं की साक्षी अध्यापकों, मनोवैज्ञानिकों, वकीलों और जजों से मिलती रहती है। हाँ, ऐसे "आदर्श" दम्पति खुद ही बच्चों के विकास में इस प्रकार बाधा बन सकते हैं: यदि बच्चा देखे कि उसकी माता उसके पिता के प्रति ही अनुरक्त व उसकी अनन्य भक्तिनी है तो इससे वही खीझ सकता है। उसका यत्न होता है कि माता के ध्यान पर उसका एकाधिकार हो, उसके किसी भी दूसरे के प्रति प्रेम-प्रदर्शन को बुरा मना सकता है। ऐसी स्थिति में हम क्या करें जबकि प्रेम-पूर्ण विवाह सन्तान के लिए बुराई का कारण बने और कलह-पूर्ण विवाह और भी भयङ्कर सिद्ध हो? हमें शुरू से ही कोशिश करनी चाहिए कि बच्चा सहयोगी बने; वास्तव में उसे विवाह-जनित सम्बन्धों का हिस्सा ही बना लेना चाहिए। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि वह केवल माता अथवा केवल पिता से ही चिपटा न रहे। हम जिस लड़के के विषय में विचार कर रहे हैं वह लाड-प्यार से बिगड़ा बच्चा है, वह अपनी माता

का ध्यान हमेशा अपनी ओर बनाये रखना चाहता है और जब कभी यह समझता है कि उसकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है, शरारतें करने लगता है।

एक बार फिर हमारे विचारों की पुष्टि होने वाली है। माता कभी अपने हाथों से इस लड़के को सजा नहीं देती। वह लड़के के पिता के घर लौटने की प्रतीक्षा करती है कि वह आये और उसे दण्ड दे। शायद इसके लिए वह अपने को कमजोर समझती है। वह समझती है कि कोई पुरुष ही आज्ञाएँ दे सकता है और आज्ञापालन करा सकता है, केवल पुरुष में ही दण्ड दे सकने योग्य दृढ़ता हो सकती है। शायद वह चाहती है कि बच्चा उसीकी ओर आकृष्ट रहे और उसे गँवा बैठने से डरती है। दोनों हालतों में वह बच्चे को पिता में दिलचस्पी लेने अथवा उसके प्रति सहयोग से दूर हो जाने की शिक्षा दे रही है। इस प्रकार स्वाभाविक है कि दोनों में कलह-विग्रह का विकास हो जाय। हमें बताया जाता है कि पिता अपनी स्त्री व अपने परिवार में अनुरक्त है, परन्तु दिन का काम समाप्त कर लेने के बाद लड़के के कारण ही घर लौटने से घृणा करता है। वह काफी कठोरता से उसे दण्ड देता और अक्सर उसे मारा करता है। कहा जाता है कि लड़का पिता को नापसन्द नहीं करता। यह बात भी असम्भव है। लड़का कमजोर मन का व्यक्ति नहीं है। उसने अपने भावों को छिपाकर रखना खूब सीख लिया है।

वह अपनी छोटी बहन को प्यार करता है, परन्तु उसके साथ नरमी से खेलता नहीं; प्रायः उसे चपत लगाता अथवा ठोकर मार देता है। वह भोजन करने के कमरे में साधारण खाट पर सोता है जबकि उसकी बहन अपने माता-पिता के कमरे में कोमल चारपाई पर सोती है। अब हम यदि इस

लड़के के विचारों को पहचानने की क्षमता पैदा कर सकें, यदि उसके प्रति सहानुभूति जगा सकें तो हमें माता-पिता के कमरे में चारपाई की यह बात खटकेगी। हम उस लड़के के मन के भीतर से सोचने, अनुभव करने और देखने का यत्न कर रहे हैं। वह अपनी माता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। रात के वक्त उसकी बहन माता के कहीं अधिक समीप होती है। माता को अपनी ओर खींचने के लिए उसे संघर्ष करना आवश्यक जान पड़ता है। उसका स्वास्थ्य अच्छा है, उसका जन्म संतोषप्रद तरीके से हुआ था और माता ने उसे सात मास अपना दूध पिलाया था। जब उसे पहली बार बोतल से दूध पिलाया गया तो उसने उलटी कर दी थी; तीन वर्ष तक उलटी कर देने की उसकी यह आदत जारी रही। यह सम्भव है कि उसका पेट खराब रहा हो। अब उसका खाना-पीना अच्छा है, परन्तु फिर भी उसके पेट की गड़बड़ जारी है। वह इसे एक कमजोरी मानता है। अब हम अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता से समझ सकते हैं कि उसने एक गर्भवती स्त्री पर पत्थर क्यों फेंके। अपने खान-पान के विषय में वह बहुत नाजुक है। यदि उसे भोजन नापसन्द हो तो उसकी माता उसे पैसा दे देती है और वह बाजार में जाकर जो चाहे खरीद और खा लेता है; फिर भी वह पड़ोसियों के पास शिकायत करता है कि उसके माँ-बाप उसे पर्याप्त खाना नहीं देते। यह एक चालाकी है जिसे उसने गढ़ लिया है। उसका हमेशा यही ढंग है। अपनी श्रेष्ठता के भावों को पाने का उसका साधन किसी-न-किसी को बदनाम करना है।

अब हम इस स्थिति में हैं कि उस स्वप्न को समझ सकें जो उसने मेरे हस्पताल में आकर मुझे बताया। उसने कहा, "एक पश्चिमी देश में मैं चरवाहे का काम करता था। मुझे

मेक्सिको भेज दिया गया जहाँ से अमरीका को लौटते हुए मुझे लड़-भिड़कर अपना रास्ता खोजना पड़ा। जब एक मेक्सिको निवासी मुझसे लड़ने को आया तो मैंने उसके पेट में लात मारी।" इस स्वप्न का अन्तरीय भाव इस प्रकार है—"मैं शत्रुओं से घिरा हुआ हूँ, मुझे उनसे लड़ाई करते रहना है।" अमरीका में चरवाहों को खूब बहादुर गिना जाता है। इस लड़के के विचार में छोटी लड़कियों का पीछा करना और लोगों के पेट में ठोकरें मारना बड़ी बहादुरी की बात है। हम पहले देख चुके हैं कि उसके जीवन में पेट को अधिक महत्व दिया गया है। उसके विचार में पेट ही शरीर का सबसे अधिक कमजोर अंग है। वह स्वयं भी पेट की कमजोरी से पीड़ित रहा है: उसके पिता का पेट भी किंचित् अव्यवस्था से गड़बड़ा जाता है और प्रायः हमेशा ऐसी शिकायत रहती है। इस प्रकार इस परिवार में पेट को उच्चतम महत्व की स्थिति तक पहुँचा दिया गया है। लड़के का उद्देश्य है कि लोगों को उनकी सबसे कमजोर जगह पर चोट पहुँचाए। उसका स्वप्न और उसकी हरकतें बिलकुल एक-सी ही जीवन-प्रणाली दरशाती हैं। वह स्वप्न की जिन्दगी ही बिता रहा है और यदि हम उसे इस स्वप्न से न जगा सकें तो वह इसी जीवन को बिताता जायगा। वह न केवल अपने पिता, अपनी बहन और विशेषतया छोटे-छोटे बच्चों तथा लड़कियों से लड़ता रहेगा वरन् उस डाक्टर से भी लड़ना चाहेगा जो कि उसके इस युद्ध को बन्द करने की कोशिश करेगा। स्वप्न से मिली प्रेरणा उसे उकसाती रहेगी कि वह आगे बढ़े, बहादुर बने, दूसरों पर विजय पाए। जब तक वह यह न समझ ले कि वह किस प्रकार अपने को धोखा दे रहा है, ऐसा कोई उपचार नहीं है जो उसे किसी प्रकार की सहायता पहुँचा सके।

हस्पताल में उसे उसके स्वप्न का अर्थ समझाया गया। उसका विचार है कि वह एक शत्रु-प्रदेश में रह रहा है और हर एक जो उसे दण्ड देना अथवा रोक रखना चाहता है मेक्सिको-निवासी के समान है, और वह सब उसके शत्रु हैं। जब वह अगली बार हस्पताल में आया तो मैंने पूछा—"जब हम पिछली बार मिले थे तब से अब तक क्या कोई खास बात हुई है ?" उसने उत्तर दिया—"मैंने एक बुरे लड़के की तरह व्यवहार किया।" "तुमने क्या किया ?" "मैंने एक छोटी लड़की का पीछा किया और उसे भगा दिया।" लड़के के द्वारा यह बात मानना अपराध-स्वीकृति से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। यह स्वीकृति एक गर्वोक्ति और एक आक्रमण के समान है। वह उस हस्पताल में ऐसी बात कह रहा है, जहाँ लोग प्रयत्न में हैं कि वह सुधरे। वह इस बात पर जोर दे रहा है कि वह एक बुरे लड़के की तरह व्यवहार करता रहा है। जैसे वह कह रहा है—"मुझसे किसी प्रकार की आशा न रखो। मैं तुम्हारे पेट में ठोकर मार दूँगा।" अब हम क्या करें ? वह अभी तक स्वप्न देखता चला जा रहा है, वह अब तक बहादुर बनकर दिखा रहा है। अपनी इस परिस्थिति से उसे जो सन्तुष्टि प्राप्त हो रही है हमें उसे कम करने की कोशिश करनी चाहिए। मैंने उससे पूछा—"क्या तुम सच ही यह समझते हो कि तुम्हारा स्वप्नदेश का वीर पुरुष छोटी-छोटी लड़कियों का ही पीछा करेगा ? क्या ऐसा करना बहादुरी की थोथी नकल नहीं है ? यदि तुम्हें वीर-पुरुष के समान बनना है तो तुम्हें किसी बड़ी लड़की का पीछा करना चाहिए। शायद तुम्हें किसी भी लड़की का पीछा नहीं करना चाहिए।" उपचार का एक तत्व यह है कि उसकी आँखें खोलनी चाहिएँ और अपनी जीवन-शैली का ही अनुसरण करने की उसकी उत्सुकता को घटाना

चाहिए। उसकी इन हरकतों की थोड़ी-बहुत हँसी करनी चाहिए। इसके बाद वह अपनी हरकतों पर अभिमान नहीं करेगा। उपचार का दूसरा रूप उसे सहयोग के लिए आवश्यक उत्साह देने में, उसकी दृष्टि में जीवन के उपयोगी और सार्थक भाग को अधिक महत्त्वपूर्ण बनाने में है। कोई भी व्यक्ति जीवन के निरर्थक भाग को तब तक नहीं अपनाता जब तक कि उसे यह भय न हो कि जीवन की सार्थक दिशा में उसका यह पराजित हो जायगा।

अकेली रहनेवाली और दफ्तर में काम करनेवाली चौबीस वर्ष की एक लड़की ने शिकायत की कि उसके मालिक ने उसकी जिन्दगी अपने दबंग व्यवहार से असह्य बना दी है। उसका विचार है कि वह मित्रता गाँठने और बनाये रखने में असमर्थ है। हमारा अनुभव इस निष्कर्ष की ओर संकेत करता है कि यदि कोई व्यक्ति मित्रता को बनाये नहीं रख सकता तो उसका कारण एक यही होता है कि वह दूसरों पर हावी हो जाने का इच्छुक है, वास्तव में उसकी दिलचस्पी केवल खुद में ही है और उसका ध्येय केवल अपनी वैयक्तिक श्रेष्ठता दिखाना ही है। शायद उस लड़की का मालिक भी इसी प्रकार का व्यक्ति है। दोनों की इच्छा एक-दूसरे पर शासन करने की है। जब-कभी ऐसे दो व्यक्ति मिलेंगे, निश्चय ही वहाँ कठिनाइयाँ पैदा हो जायँगी। यह लड़की सात सन्तानों में सबसे छोटी और अपने परिवार की लाडली बेटी है। छुटपन में उसका नाम 'टाम' रख दिया गया था क्योंकि सदैव उसकी यही इच्छा रहती थी कि वह लड़का होती। इस बात से हमारा सन्देह बढ़ जाता है कि उसने वैयक्तिक रूप में दूसरों पर छा जाने में ही श्रेष्ठता का अपना ध्येय निश्चित कर लिया है। उसके विचार में पुरुष होना मालिक होने, दूसरों को वश में

करने के तुल्य है। वह सुन्दर है परन्तु सोचती है कि लोग उसे केवल सुन्दर चेहरे के कारण ही पसन्द करते हैं; इसलिए कुरूप होने अथवा चोट खाने का भय उसे सदा बना रहता है। आज के युग में सुन्दर लड़कियाँ आसानी से दूसरों को प्रभावित अथवा वश में कर सकती हैं। इस सचाई को यह लड़की भलीभाँति समझती है। फिर भी वह पुरुषों की भाँति दूसरों पर छाये रहना ही चाहती है, परिणामस्वरूप अपने सौंदर्य से उसे विशेष प्रसन्नता नहीं है।

उसकी सबसे पुरानी स्मृति एक आदमी से भय खाने की है, और वह स्वीकार करती है कि अब भी उसे चोरों और पागलों के हमलों का डर बना रहता है। यह विचित्र-सा जान पड़ेगा कि एक लड़की, जिसे पुरुष होने की इच्छा है, चोरों और पागलों से भयभीत रहे। परन्तु वास्तव में यह बात विशेष आश्चर्यप्रद नहीं है। अपनी कमजोरी की अनुभूति ही उसके लिए उसके ध्येय को अंकित करती है। वह ऐसी परिस्थिति में होना चाहती है जहाँ कि वह दूसरों को दास बना सके और उन पर शासन कर सके। उसकी इच्छा रहती है कि बाकी सब ही प्रकार की परिस्थितियों से वह बची रह सके। चोरों और पागलों पर पूरा काबू नहीं पाया जा सकता, इसलिए उसके अनुसार इन सबको मिटा ही देना चाहिए। वह एक सरल रीति से ही पुरुष के समान बनना चाहती है और अपनी असफलता की सम्भावना में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी कायम रखना चाहती है, जो उसकी रक्षा कर सकें। स्त्रीत्व की स्थिति के प्रति इस प्रकार के विस्तृत असन्तोष के साथ-साथ जिसे कि मैंने 'पुंस्त्व विरोध' (मैस्क्युलाइन प्रोटेस्ट) के नाम से पुकारा है इस प्रकार की आवेशपूर्ण भावना भी सजग रहती

है—" मैं एक पुरुष हूँ जो स्त्री होने के अलाभ के विरुद्ध लड़ रहा हूँ।"

अब हम देखें कि क्या ऐसे ही भाव हम उसके स्वप्नों में भी पा सकते हैं ? उसे अक्सर अकेले छोड़ दिए जाने का स्वप्न दीखा करता है। बचपन में वह लाड-प्यार से बिगड़ी एक बच्ची थी। उसके स्वप्न का अर्थ है—"मेरा ध्यान रक्खा जाना चाहिए, मुझे अकेले छोड़ देना खतरे से खाली नहीं है। सम्भव है दूसरे मुझ पर हमला करके मुझे वश में कर लें।" एक दूसरा स्वप्न जो प्रायः उसे दीखा करता है यह है कि उसने अपना बटुआ गँवा दिया है। जैसे इस स्वप्न द्वारा वह कहती है—"सावधान ! खतरा है कि तुम कुछ गँवा बैठोगी।" वैसे वह कुछ भी गँवाना नहीं चाहती, किन्तु वह जीवन में एक बात को अर्थात् बटुआ गंवाने को समस्त परिस्थिति का प्रतिनिधित्व सौंप देना निश्चित कर लेती है। विशेष प्रकार की भावनाएँ पैदा करके स्वप्न जीवन-प्रणाली को किस प्रकार सहारा दिया करते हैं इसका यह एक भिन्न उदाहरण है। उसने अपना बटुआ गँवाया नहीं है, परन्तु वह स्वप्न देखती है कि वह गुम हो गया है। इस प्रकार गुम हो जाने की भावना शेष रह जाती है। एक दूसरा लम्बा स्वप्न हमको उसके दृष्टि-कोण को समझने के लिए अधिक सहायक होता है। उसने बताया—"मैं एक ऐसे तालाब पर नहाने गई थी जहाँ कि कितने ही लोग मौजूद थे। किसी ने देख लिया कि मैं वहां लोगों के सिरों पर खड़ी थी। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मुझे देखकर कोई व्यक्ति चिल्लाया और इससे मेरे नीचे गिर जाने का खतरा पैदा हो गया।" यदि मैं शिल्पकार होता तो ठीक इसी प्रकार उसकी परिस्थिति की मूर्ति बनाता, जहाँ कि वह दूसरों के सिरों पर, उन्हें अपने पैरों की पौड़ी बनाकर,

करने के तुल्य है। वह सुन्दर है परन्तु सोचती है कि लोग उसे केवल सुन्दर चेहरे के कारण ही पसन्द करते हैं; इसलि कुरूप होने अथवा चोट खाने का भय उसे सदा बना रहता है आज के युग में सुन्दर लड़कियाँ आसानी से दूसरों को प्रभा वित अथवा वश में कर सकती हैं। इस सचाई को यह लड़ भलीभाँति समझती है। फिर भी वह पुरुषों की भाँति दूस पर छाये रहना ही चाहती है, परिणामस्वरूप अपने सौ से उसे विशेष प्रसन्नता नहीं है।

उसकी सबसे पुरानी स्मृति एक आदमी से भय खाने की और वह स्वीकार करती है कि अब भी उसे चोरों और पा के हमलों का डर बना रहता है। यह विचित्र-सा जान कि एक लड़की, जिसे पुरुष होने की इच्छा है, चोरों पागलों से भयभीत रहे। परन्तु वास्तव में यह बात आश्चर्यप्रद नहीं है। अपनी कमजोरी की अनुभूति लिए उसके ध्येय को अंकित करती है। वह ऐसी परिस्थिति चाहती है जहाँ कि वह दूसरों को दास बना सके पर शासन कर सके। उसकी इच्छा रहती है प्रकार की परिस्थितियों से वह बची रह पागलों पर पूरा काबू नहीं पाय अनुसार धन सबको मिटा ही रीति से ही पुरुष के समान बनता फलता की सम्भावना

है—" मैं एक पुरुष हूँ जो स्त्री होने के अलाभ के विरुद्ध लड़ रहा हूँ।"

अब हम देखें कि क्या ऐसे ही भाव हम उसके स्वप्नों में भी पा सकते हैं? उसे अक्सर अकेले छोड़ दिए जाने का स्वप्न दीखा करता है। बचपन में यह लाड-प्यार से बिगड़ी एक बच्ची थी। उसके स्वप्न का अर्थ है—"मेरा ध्यान रक्खा जाना चाहिए, मुझे अकेले छोड़ देना खतरे से खाली नहीं है। सम्भव है दूसरे मुझ पर हमला करके मुझे वश में कर लें।" एक दूसरा स्वप्न जो प्रायः उसे दीखा करता है यह है कि उसने अपना बटुआ गँवा दिया है। जैसे इस स्वप्न द्वारा वह कहती है—"सावधान! खतरा है कि तुम कुछ गँवा बैठोगी।" वैसे वह कुछ भी गँवाना नहीं चाहती, किन्तु वह जीवन में एक बात को अर्थात् बटुआ गंवाने को समस्त परिस्थिति का प्रतिनिधित्व सौंप देना निश्चित कर लेती है। विशेष प्रकार की भावनाएँ पैदा करके स्वप्न जीवन-प्रणाली को किस प्रकार सहारा दिया करते हैं इसका यह एक भिन्न उदाहरण है। उसने अपना बटुआ गँवाया नहीं है, परन्तु वह स्वप्न देखती है कि वह गुम हो गया है। इस प्रकार गुम हो जाने की भावना शेष रह जाती है। एक दूसरा लम्बा स्वप्न हमको उसके दृष्टि-कोण को समझने के लिए अधिक सहायक होता है। उसने बताया—"मैं एक ऐसे तालाब पर नहाने गई थी जहाँ कि कितने ही लोग मौजूद थे। किसी ने देख लिया कि मैं वहां लोगों के सिरों पर खड़ी थी। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मुझे देखकर कोई व्यक्ति चिल्लाया और इससे मेरे नीचे गिर जाने का खतरा पैदा हो गया।" यदि मैं शिल्पकार होता तो ठीक इसी प्रकार उसकी परिस्थिति की मूर्ति बनाता, जहाँ कि वह दूसरों के सिरों पर, उन्हें अपने पैरों की चौकी बनाकर,

करने के तुल्य है। वह सुन्दर है परन्तु सोचती है कि लोग उसे केवल सुन्दर चेहरे के कारण ही पसन्द करते हैं; इसलिए कुरूप होने अथवा चोट खाने का भय उसे सदा बना रहता है। आज के युग में सुन्दर लड़कियाँ आसानी से दूसरों को प्रभावित अथवा वश में कर सकती हैं। इस सचाई को यह लड़की भलीभाँति समझती है। फिर भी वह पुरुषों की भाँति दूसरों पर छाये रहना ही चाहती है, परिणामस्वरूप अपने सौंदर्य से उसे विशेष प्रसन्नता नहीं है।

उसकी सबसे पुरानी स्मृति एक आदमी से भय खाने की है, और वह स्वीकार करती है कि अब भी उसे चोरों और पागलों के हमलों का डर बना रहता है। यह विचित्र-सा जान पड़ेगा कि एक लड़की, जिसे पुरुष होने की इच्छा है, चोरों और पागलों से भयभीत रहे। परन्तु वास्तव में यह बात विशेष आश्चर्यप्रद नहीं है। अपनी कमजोरी की अनुभूति ही उसके लिए उसके ध्येय को अंकित करती है। वह ऐसी परिस्थिति में होना चाहती है जहाँ कि वह दूसरों को दास बना सके और उन पर शासन कर सके। उसकी इच्छा रहती है कि बाकी सब ही प्रकार की परिस्थितियों से वह बची रह सके। चोरों और पागलों पर पूरा काबू नहीं पाया जा सकता, इसलिए उसके अनुसार इन सबको मिटा ही देना चाहिए। वह एक सरल रीति से ही पुरुष के समान बनना चाहती है और अपनी असफलता की सम्भावना में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी कायम बना चाहती है, जो उसकी रक्षा कर सकें। स्त्रीत्व की स्थिति प्रति इस प्रकार के विस्तृत असन्तोष के साथ-साथ जिसे मैंने 'पुंस्त्व विरोध' (मैस्कुलाइन प्रोटेस्ट) के नाम से रा है इस प्रकार की आवेशपूर्ण भावना भी जागृत रहती

है—" मैं एक पुरुष हूँ जो स्त्री होने के अलाभ के विरुद्ध लड़ रहा हूँ।"

अब हम देखें कि क्या ऐसे ही भाव हम उसके स्वप्नों में भी पा सकते हैं? उसे अक्सर अकेले छोड़ दिए जाने का स्वप्न दीखा करता है। बचपन में वह लाड-प्यार से बिगड़ी एक बच्ची थी। उसके स्वप्न का अर्थ है—"मेरा ध्यान रक्खा जाना चाहिए, मुझे अकेले छोड़ देना खतरे से खाली नहीं है। सम्भव है दूसरे मुझ पर हमला करके मुझे वश में कर लें।" एक दूसरा स्वप्न जो प्रायः उसे दीखा करता है यह है कि उसने अपना बटुआ गँवा दिया है। जैसे इस स्वप्न द्वारा वह कहती है—"सावधान! खतरा है कि तुम कुछ गँवा बैठोगी।" वैसे वह कुछ भी गँवाना नहीं चाहती, किन्तु वह जीवन में एक बात को अर्थात् बटुआ गंवाने को समस्त परिस्थिति का प्रतिनिधित्व सौंप देना निश्चित कर लेती है। विशेष प्रकार की भावनाएँ पैदा करके स्वप्न जीवन-प्रणाली को किस प्रकार सहारा दिया करते हैं इसका यह एक भिन्न उदाहरण है। उसने अपना बटुआ गँवाया नहीं है, परन्तु वह स्वप्न देखती है कि वह गुम हो गया है। इस प्रकार गुम हो जाने की भावना शेष रह जाती है। एक दूसरा लम्बा स्वप्न हमको उसके दृष्टि-कोण को समझने के लिए अधिक सहायक होता है। उसने बताया—"मैं एक ऐसे तालाब पर नहाने गई थी जहाँ कि कितने ही लोग मौजूद थे। किसी ने देख लिया कि मैं वहां लोगों के सिरों पर खड़ी थी। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मुझे देखकर कोई व्यक्ति चिल्लाया और इससे मेरे नीचे गिर जाने का खतरा पैदा हो गया।" यदि मैं शिल्पकार होता तो ठीक इसी प्रकार उसकी परिस्थिति की मूर्ति बनाता, जहाँ कि वह दूसरों के सिरों पर, उन्हें अपने पैरों की चौकी बनाकर,

खड़ी होती। यही उसकी जीवन-प्रणाली है, यही विचार हैं जिन्हें वह जागृत करना चाहती है। वह अपनी इस स्थिति को अस्थिर और डाँवाडोल भी मानती है, और यह भी सोचती है कि अन्य लोग उसकी स्थिति मे उत्पन्न भय को समझ सकते हैं। दूसरों को चाहिए कि उसका ध्यान रक्खें और सावधान रहें, जिससे कि वह उनके सिरों पर खड़ी रह सके। वह पानी में तैरते हुए अपने को सुरक्षित नहीं समझती यही उसके जीवन की कुल कहानी है। उसने अपना ध्येय बना लिया है—"लड़की होने के बावजूद भी पुरुष होना।" वह महत्वाकांक्षाओं से परिपूर्ण है—जैसे कि परिवार के सबसे छोटे बच्चे प्रायः हुआ करते हैं। परन्तु परिस्थिति के अनुसार पर्याप्तता प्राप्त करने के स्थान पर उसकी इच्छा रहती है कि वह श्रेष्ठतर दिखाई पड़े। पराजय का भय सदा उसका पीछा करता रहता है। यदि हम उसकी सहायता करना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि कोई ऐसा रास्ता ढूँढ़ें, जिसमें कि वह अपने स्त्रीत्व की स्थिति से समझौता कर सके, उसका भय दूर हो, पुरुषत्व का मूल्यांकन कम हो तथा साथी मानवों से यह मैत्री बरत सके और अपने को उनके बराबर अनुभव कर सके।

एक लड़की ने, जिसका छोटा भाई एक दुर्घटना में मर गया था और उस समय वह तेरह वर्ष की थी अपनी सब से पुरानी स्मृति इस प्रकार बताई—"जब मेरा भाई बच्चा ही था और चलना सीख रहा था, उसने खड़े होने के लिए एक कुर्सी का सहारा लिया तो कुर्सी उस पर गिर पड़ी।" उसे और दुर्घटना याद है और हम देखेंगे कि यह लड़की के खतरों से बहुत प्रभावित है। उसने सुनाया—"जो स्वप्न मुझे दीखा करता है वह बहुत अजीब है।

में प्रायः ऐसे बाजारों में चलती हूं जिनमें कि वही गड्ढा होता है जो मुझे दीखता नहीं और मैं चलते चलते उसमें गिर जाती हूं। गड्ढे में पानी भरा होता है। जैसे ही मैं पानी का स्पर्श करती हूं, धड़कर मैं जाग जाती हूं। इस समय मेरे हृदय की धड़कन बहुत तेज होती है।" हम इस स्वप्न को इतना विचित्र नहीं पाते, जितना कि यह लड़की। परन्तु यदि उसे अपने आपको इस स्वप्न के साधन से डराते ही रहना है तब तो वह इसे विचित्र ही समझेगी और इसका अर्थ लगाने में असफल रहेगी। यह स्वप्न उससे कहता है—"सावधान रहना, चारों ओर ऐसे खतरे हैं जिन्हें तुम नहीं पहचानती हो।" हमें तो यह स्वप्न और भी बहुत कुछ बताता है। यदि हम निचले स्तर पर ही हों तो हम गिर नहीं सकते। यदि गिरने का भय है तो अवश्य यह विचार होगा कि हम दूसरों से ऊँचे हैं। जैसा कि पिछले उदाहरण में यह लड़की भी कह रही है—"मैं श्रेष्ठतर हूँ, परन्तु मुझे यह यत्न जारी रखना है कि मैं गिर न जाऊँ।"

एक दूसरे उदाहरण में हम देखेंगे कि सबसे पहली स्मृति और स्वप्न में एक-सी ही जीवन-प्रणाली मिलेगी अथवा नहीं। एक लड़की ने मुझे बताया—"मुझे याद है कि एक मकान को बनता देखने में मुझे बड़ी दिलचस्पी थी।" हम आशा कर सकते हैं कि यह लड़की सहयोगी स्वभाव की लड़की है। हम एक छोटी लड़की से मकान बनाने में हिस्सा लेने की आशा नहीं कर सकते, परन्तु यह अपनी दिलचस्पी से दूसरों के कर्तव्यों में हाथ बटाने का सम्मान दरशा सकती है। "मैं बिलकुल नन्हीं गुड़िया सी थी और एक बहुत ऊँची खिड़की के पास खड़ी थी। मुझे उस खिड़की के शीशों की इस तरह याद है जैसे कि कल की बात हो।" यदि उसके ध्यान

बड़ी होती। यही उसकी जीवन-प्रणाली है, यही विचार हैं जिन्हें यह जागृत करना चाहती है। वह अपनी इस स्थिति को अस्थिर और डाँवाडोल भी मानती है, और यह भी सोचती है कि अन्य लोग उसकी स्थिति में उत्पन्न भय को समझ सकते हैं। दूसरों को चाहिए कि उसका ध्यान रक्खें और सावधान रहें, जिससे कि वह उनके सिरों पर खड़ी रह सके। वह पानी में तैरते हुए अपने को सुरक्षित नहीं समझती; यही उसके जीवन की कुल कहानी है। उसने अपना ध्येय बना लिया है—"लड़की होने के बावजूद भी पुरुष होना।" वह महत्वाकांक्षाओं से परिपूर्ण है—जैसे कि परिवार के सबसे छोटे बच्चे प्रायः हुआ करते हैं। परन्तु परिस्थिति के अनुसार पर्याप्तता प्राप्त करने के स्थान पर उसकी इच्छा रहती है कि वह श्रेष्ठतर दिखाई पड़े। पराजय का भय सदा उसका पीछा करता रहता है। यदि हम उसकी सहायता करना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि कोई ऐसा रास्ता ढूँढ़ें, जिसमें कि वह अपने स्त्रीत्व की स्थिति से समझौता कर सके, उसका भय दूर हो, पुरुषत्व का मूल्यांकन कम हो तथा साथी मानवों से वह मैत्री बरत सके और अपने को उनके बराबर अनुभव कर सके।

एक लड़की ने, जिसका छोटा भाई एक दुर्घटना में मर गया था और उस समय वह तेरह वर्ष की थी अपनी सब से पुरानी स्मृति इस प्रकार बताई—"जब मेरा भाई बच्चा ही था और चलना सीख रहा था, उसने खड़े होने के लिए एक कुर्सी का सहारा लिया तो कुर्सी उस पर गिर पड़ी।" उसे एक और दुर्घटना याद है और हम देखेंगे कि यह लड़की दुनिया के खतरों से बहुत प्रभावित है। उसने सुनाया—"अक्सर जो स्वप्न मुझे दीखा करता है वह बहुत अजीब है।

मैं प्रायः ऐसे बाजारों में चलती हूं जिनमें कि कहीं गड्ढा होता है जो मुझे दीखता नहीं और मैं चलते चलते उसमें गिर जाती हूं। गड्ढे में पानी भरा होता है। जैसे ही मैं पानी का स्पर्श करती हूँ, धूदकर मैं जाग जाती हूँ। इस समय मेरे हृदय की धड़कन बहुत तेज होती है।" हम इस स्वप्न को उतना विचित्र नहीं पाते, जितना कि वह लड़की। परन्तु यदि उसे अपने आपको इस स्वप्न के साधन से डराते ही रहना है तब तो वह इसे विचित्र ही समझेगी और इसका अर्थ लगाने में असफल रहेगी। यह स्वप्न उससे कहता है—"सावधान रहना, चारों ओर ऐसे खतरे हैं जिन्हें तुम नहीं पहचानती हो।" हमें तो यह स्वप्न और भी बहुत कुछ बताता है। यदि हम निचले स्तर पर ही हों तो हम गिर नहीं सकते। यदि गिरने का भय है तो अवश्य यह विचार होगा कि हम दूसरों से ऊँचे हैं। जैसा कि पिछले उदाहरण में यह लड़की भी कह रही है—"मैं श्रेष्ठतर हूँ, परन्तु मुझे यह यत्न जारी रखना है कि मैं गिर न जाऊँ।"

एक दूसरे उदाहरण में हम देखेंगे कि सबसे पहली स्मृति और स्वप्न में एक-सी ही जीवन-प्रणाली मिलेगी अथवा नहीं। एक लड़की ने मुझे बताया—"मुझे याद है कि एक मकान को बनता देखने में मुझे बड़ी दिलचस्पी थी।" हम आशा कर सकते हैं कि यह लड़की सहयोगी स्वभाव की

में खिड़की के ऊँची होने की याद खुद गई है तो उसके मन में बड़े और छोटे का भेद-भाव अवश्य रहा होगा। उसका मतलब है—"खिड़की बड़ी थी और मैं छोटी थी।" मुझे यह जानकर हैरान न होगी, कि वह छोटे कद की लड़की थी और इसी बात ने बड़े और छोटेपन की तुलना में उसकी दिलचस्पी पैदा कर दी थी। उसका यह कहना कि यह पुरानी स्मृति मुझे अच्छी तरह याद है, एक प्रकार का अभिमान है। अब उससे उसका स्वप्न सुनिए—"मेरे साथ एक मोटर पर कितने ही दूसरे लोग सवार थे।" वह सहयोगी स्वभाव की है, जैसा कि हमने पहले सोचा था। वह दूसरों के साथ रहना पसन्द करती है। "हम गाड़ी बढ़ाते रहे और फिर एक जंगल के सामने जाकर रुक गए। हम सभी उतरे और दौड़कर जंगल में जा घुसे। उनमें से प्रायः सब ही मुझसे बड़े थे।" वह कद में भेद को एक बार फिर दोहरा रही है—"परन्तु मैं ठीक वक्त पर ही उस लिफ्ट तक जा पहुँची जो हमें लेकर एक दस फुट गहरी खान में उतर गई। हमने सोचा कि यदि लिफ्ट से बाहर कदम रक्खेंगे तो जहरीली हवा के कारण मारे जायंगे।" अब वह भय का चित्र बना रही है। प्रायः सब ही लोग किसी-न-किसी खतरे से भयभीत रहते हैं। मनुष्य बहुत साहसी प्राणी नहीं है—"परन्तु हम सकुशल ही उतर गए।" यहाँ आशावादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। यदि कोई व्यक्ति सहयोगी होता है तो वह सदा साहसी और आशावादी भी होता है। "हम वहाँ एक मिनट ठहरे, फिर ऊपर आ गए और तेजी से मोटर की ओर भाग आए।" मुझे निश्चय है कि यह लड़की सदा ही सहयोगी झुकाव की है। परन्तु उसका खयाल है कि उसे अवश्य ही लम्बा और बड़ा होना चाहिए। यहाँ हम किञ्चित् आवेश

पायेंगे, जैसे कि वह पैरों की उंगलियों के बल खड़ी हो। परन्तु यह आवेश उसके दूसरों को पसन्द करने से और सामाजिक सफलताओं में उसकी दिलचस्पी से सन्तुलित-सा हो जायगा।

: ६ :

पारिवारिक प्रभाव

जन्म के कारण से ही बच्चा अपने को अपनी माता से सम्बन्धित करने की कोशिश करता है उसकी सब गतिविधि और क्रियाओं का यही ध्येय होता है। लगातार कई मास उसकी जिन्दगी में उसकी माता को ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग लेना होता है। इन दिनों बालक प्रायः पूर्णतया माता पर ही आश्रित रहता है। इसी परिस्थिति में सहयोग करने की सामर्थ्य का आरम्भिक विकास होने लगता है। मां ही अपने बच्चे को किसी दूसरे मनुष्य से सम्पर्क का प्रथम अवसर देती है। अपने सिवा किसी दूसरे में दिलचस्पी रखने का पहला मौका बच्चे को माता द्वारा ही प्राप्त होता है। वह बच्चे के सामाजिक जीवन की पहली कड़ी बनती है। ऐसा बच्चा जो अपनी माँ से अथवा किसी दूसरे व्यक्ति से, जिसने उसका स्थान लिया हो, यदि बिलकुल सम्बन्ध न रख सका हो, जीवित नहीं रह सकता।

यह सम्बन्ध इतना अटल और इसका प्रभाव इतना व्यापक होता है, कि जीवन के पिछले वर्षों में चरित्र की किसी विशिष्टता की तरह इसकी ओर पैतृक या मातृक देन कहकर इशारा नहीं किया जा सकता। बड़ों से प्राप्त की गई हर एक प्रवृत्ति, जो माता के द्वारा बनाई या बदली गई हो बच्चा प्रच्छन्न रूप से ग्रहण कर लेता है। माता की चतुरता अथवा चातुर्यहीनता बच्चे की सब अव्यक्त सम्भावनाओं को प्रभावित करती है। माता की चतुरता से हमारा मतलब इसके सिवा और कुछ नहीं

कि यह किस सीमा तक बच्चे का सहयोग पाने के लिए उसे जीत सकती है अथवा उससे सहयोग कर सकती है। यह चतुरता किन्हीं विशेष नियमों को देखने-भालने से तो सीखी नहीं जा सकती। हर रोज नई परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। हज़ारों ही ऐसी छोटी-छोटी बातें हैं, जिनमें बच्चे की आवश्यकताओं को समझने के लिए उसे अपनी अन्तर्दृष्टि और आन्तरिक अनुभूति का प्रयोग करना पड़ता है। माता तो तभी चतुर हो सकती है जब उसे अपने बच्चों से दिलचस्पी हो और उनका स्नेह जीत लेने में तथा उनकी भलाई प्राप्त कर लेने में वह प्रयत्नशील रहती हो।

उसकी सब प्रकार की चेष्टाओं में हम उसका दृष्टिकोण भाँप सकते हैं। जब कभी भी माँ अपने बच्चे को गोद में उठा लेती है, उससे बातें करती है, उसे नहलाती अथवा खिलाती है उस समय उसको बच्चे के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर मिलता है। यदि उसे अपने कर्तव्य पालन की अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं है तो माँ की चातुर्यहीनता उसके फूहड़पन में प्रकट हो जायगी और बच्चा माँ से पिण्ड छुड़ाने का प्रयत्न करेगा। यदि उसने बच्चे को ठीक ढंग से नहलाना नहीं सीखा तो बच्चा स्नान को प्रतिदिन के एक दुस्सह अनुभव के समान समझने लगेगा। वह माँ से समीपतर होने का यत्न करने के स्थान पर उससे दूर भागने की कोशिश करेगा। बच्चे को सुलाने में माँ को चतुरता से काम लेना पड़ता है। उसके सब काम और उनसे पैदा होने वाला शोर माँ की चतुरता अथवा चातुर्यहीनता को प्रगट कर सकता है। बच्चे का ध्यान रखने में अथवा उसे अकेला छोड़ देने में माँ को चतुरता की आवश्यकता है। माँ को तो ताज़ी हवा, कमरे की सर्दी-गर्मी, खान-पान, सोने का ढंग, आदतें डालने, सफाई आदि बच्चे के सम्बन्ध

वातावरण का ध्यान रखना है। प्रत्येक अवसर पर अपनी हरकतों से वह बच्चे को यह अवसर देती है कि वह उसे पसन्द करे अथवा नापसन्द करे, सहयोग करना सीखे अथवा सहयोग को लात मार दे।

माँ की चातुर्य-प्राप्ति कोई रहस्यमय बात नहीं है। यह तो दिलचस्पी और अपने आपको इस ओर प्रेरणा देने का परिणाम होता है। मातृ-पद के लिए तैयारी जीवन के आरम्भिक वर्षों में ही शुरू हो जाती है। किसी भी लड़की के, अपने से छोटे बच्चों व नवजात शिशु के प्रति व्यवहार में उसके भावी जीवन व कर्तव्यों की ओर उठाए गए कदमों को हम पहिचान सकते हैं। लड़के और लड़कियों को कभी ऐसी एक-सी शिक्षा नहीं देनी चाहिए जैसे कि भविष्य में उन्हें एक-से ही कर्तव्य निभाने हों। यदि हम चाहते हैं कि माताएँ निपुण हों तो लड़कियों को मातृत्व की तैयारी की शिक्षा इस प्रकार मिलनी चाहिए कि वे माँ बनने की सम्भावना को पसन्द करने लगें, इसे एक सृजनात्मक सक्रियता मानने लगें और जीवन में जब इस परिस्थिति से उनका सामना हो तो वे निराशा ना अनुभव करें।

दुर्भाग्यवश हमारी संस्कृति में, मातृत्व में माता के भाग को प्रायः कम महत्व का स्थान दिया जाता है। यदि लड़कियों की अपेक्षा लड़के अच्छे समझे जायेंगे, यदि उनके पद को लड़कियों से बेहतर कहा जायगा, तो स्वाभाविक है कि वे अपने भविष्य के कर्तव्यों के प्रति उदासीन हो जायँ। अपेक्षाकृत छोटेपन के स्थान से तो कोई भी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। जब ऐसी लड़कियां बड़ी होकर विवाह करती हैं और जब उन्हें अपनी सन्तान होने की सम्भावना दिखाई पड़ती है तो वे एक-न-एक ढंग से अपना विरोध प्रदर्शित करती हैं। अपनी सन्तान

की न तो उन्हें प्रसन्नता होती है, न उसके लिए कोई इच्छा। वह सन्तान की उत्सुकता से प्रतीक्षा नहीं करतीं और न वह सन्तान पैदा करने को दिलचस्प व सृजनात्मक कर्तव्य मानती हैं। हमारे समाज के सामने शायद यही सबसे बड़ी समस्या है, परन्तु इसे सुलझाने के कोई प्रयत्न नहीं हो रहे। समस्त मानव-समाज का स्त्रियों के मातृत्व के प्रति दृष्टिकोण से गहरा सम्बन्ध है। प्रायः सभी जगह जीवन में स्त्रियों के दान का मूल्य कम लगाया जाता है और उसे गौण समझा जाता है। बचपन में भी हम देखते हैं कि लड़के घर के काम को ऐसा समझते हैं जो कि नौकरों द्वारा ही किया जाना चाहिए, जैसे कि उनके आत्म-सम्मान का दावा हो कि घर के काम-काज में किसी तरह की भी सहायता करने को उन्होंने अँगुली भी नहीं लगानी है। घर बनाने तथा उसकी देख-भाल करने को स्त्रियों द्वारा सुयोग्यता से सम्पन्न होने वाला काम नहीं समझा जाता परन्तु ऐसी सिर-दर्दी समझी जाती है जो कि उन पर ठूंस दी गई है। यदि कोई स्त्री घर की देख-भाल को सचमुच ही ऐसी कला मान सके जिसमें कि वह दिलचस्पी ले सकती है और जिसके द्वारा वह अपने सगे सम्बन्धियों के जीवन को हलका और सतेज कर सकती है तो वह इस कर्तव्य को दुनिया के किसी भी दूसरे कर्तव्य के समान बना देगी। दूसरी ओर यदि इस काम-काज को पुरुष के लिए तो बहुत हेय माना जाय तो क्या स्त्रियों का अपने कर्तव्यों के प्रति विरोध-भावना और विद्रोह प्रगट करना कोई आश्चर्य की बात है? क्योंकि वह अपने आपको पुरुषों से किसी भी दशा में कम नहीं समझती, इसलिए उसकी अन्तःशक्ति के विकास और उचित आदर प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है। यह ठीक है कि अन्तःशक्तियां केवल सामाजिक भावना के सजग होने पर ही विकसित हो सकती

हैं, परन्तु सामाजिक भावना उन्हें ठीक मार्ग तब ही प्रदर्शित कर सकेगी जब कि उसके विकास पर बाह्य अवरोधों और सीमाओं का अङ्कुश न लगा हो।

जहां स्त्रियों के कर्तव्य-भाग का मूल्य कम लगाया जाता है वहां दाम्पत्य-जीवन की कुल सरसता नष्ट हो जाती है। कोई भी स्त्री जो बच्चों में दिलचस्पी रखने को हीन काम समझती हो अपने आपको बच्चों के जीवन के लिए उस आवश्यक निपुणता, सावधानी, समझ और सहानुभूति में शिक्षित नहीं कर सकती, जिसकी कि उसे जीवन के प्रारम्भ में ही अत्यन्त आवश्यकता होती है। अपने पद और स्थिति से असन्तुष्ट स्त्री अपने जीवन का एक ऐसा ध्येय नियत कर लेती है जो कि उसे अपनी सन्तान से उचित सम्बन्ध स्थिर करने में बाधक सिद्ध होता है। उसका ध्येय अपने बच्चों के ध्येय से मेल नहीं खाता, वह प्रायः अपनी वैयक्तिक श्रेष्ठता सिद्ध करने में ही निमग्न रहती है। इस दशा में, इस अवस्था में, बच्चे उसके लिए केवल दुखदायी तथा उद्देश्य भंग करनेवाले बनकर ही रह जाते हैं। यदि हम असफल रहने वाले व्यक्तियों के जीवन की छानबीन करें तो प्रायः सदा ही देखेंगे कि उनकी माताएँ अपने कर्तव्यों को खूबी से नहीं निभाती रहीं। उन्होंने बच्चों को जीवन के प्रारम्भिक दिनों में उपयोगी शिक्षा नहीं दी। यदि माताएँ इस प्रकार कर्तव्य-च्युत हो जायँ और उन्हें अपने कर्तव्यों के प्रति असन्तोष हो अथवा वह उनमें दिलचस्पी न लें तो सारी मानव-जाति ही खतरे में पड़ जायगी।

फिर भी इन असफलताओं के लिए माता को ही अपराधी नहीं ठहरा सकते। यहां अपराध की बात नहीं है, सम्भवतः स्वयं ही माता को सहयोग की शिक्षा नहीं मिली थी। शायद अपने दाम्पत्य-जीवन में वह अप्रसन्न और दलित है। अपनी परि-

स्थितियों में यह घबराई हुई और चिन्तित है तथा कभी-कभी यह उनसे निराश और आतुर हो उठती है। एक सुखद दाम्पत्य-जीवन के विकास में कितनी ही बाधाएँ होती हैं। यदि माता रुग्ण रहती है तो बच्चों से सहयोग करने की इच्छा रखते हुए भी वह अपनी क्षमता व सामर्थ्य को सीमित पाती है। यदि वह दिन में काम पर जाती है तो शायद संध्या को लौटते वक्त थकी होती है। यदि परिवार की आर्थिक स्थिति अव्यवस्थित हो तो बच्चे का खाना पहनना और स्वभाव सब ही अव्यवस्थित हो सकते हैं। फिर बच्चे की हरकतें उसके अनुभवों द्वारा निश्चित नहीं होती, किन्तु उन अनुभवों का जो वह निष्कर्ष निकालता है, उनके द्वारा निश्चित होती हैं। जब हम किसी समस्याजनक बच्चे की कहानी को टटोलते हैं तो हमें उसके और उसकी माता के बीच के सम्बन्धों में कठिनाइयां दीख पड़ती हैं। हमें यही कठिनाइयां कई दूसरे बच्चों में भी दिखाई पड़ती हैं, जिन्होंने कि उनका भिन्न ढंग से सामना किया है। इस प्रकार हमारा ध्यान वैयक्तिक-मनोविज्ञान के मूल सिद्धान्त की ओर आकर्षित हो जाता है। विशेष प्रकार के चरित्रों के विकास के विशेष कारण नहीं होते, परन्तु कोई भी बच्चा अपने ध्येय के लिए अपने अनुभवों का प्रयोग कर सकता है और उन्हें अपने लिए कारण बना सकता है। उदाहरण के लिए हम यह नहीं कह सकते कि यदि किसी बच्चे को सन्तोषप्रद भोजन नहीं मिलता तो वह बड़ा होकर भयंकर अपराधी ही बनेगा। हमें तो यह देखना है कि उसने अपने अनुभव से क्या निष्कर्ष निकाला है।

यह समझ लेना आसान है, कि यदि एक स्त्री अपनी स्त्रीत्व की स्थिति से असन्तुष्ट है तो वह अपने लिए कठिनाइयाँ और आवेश पैदा कर लेगी। हमें ज्ञात है कि मातृत्व की अभिलाषा कितनी शक्तिशाली होती है। इस सम्बन्ध में किये गए अन्वेषणों

ने स्पष्ट कर दिया है कि एक माता में अपनी सन्तान को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति शेष सब प्रवृत्तियों से बलवती होती है। उदाहरण के लिए जानवरों में, चूहों और बन्दरों में मातृत्व के लिए प्रवृत्ति व प्रेरणा भूख अथवा यौन-प्रवृत्ति व प्रेरणाओं से दृढ़तर जान पड़ती है। यहां तक कि यदि इन्हें दोनों में से एक प्रेरणा को चुनना पड़े तो मातृत्व की प्रेरणा की ही विजय होती है। यौन-प्रवृत्ति इस प्रेरणा का मूल नहीं है, इसकी उपज तो सहयोग के आदर्श से होती है। प्रायः माता सन्तान को अपने शरीर का ही एक टुकड़ा समझती है। अपने बच्चों के माध्यम द्वारा ही वह जगत के समस्त जीवन से सम्बद्ध होती है। वह अपने को जीवन और मृत्यु की अधिनायका समझती है। किसी-न-किसी अंश में प्रत्येक माता में हम यह विचार पा सकते हैं कि सन्तान द्वारा उसने सृजन के कार्य में हाथ बढ़ाया है। हम इतना तक कह सकते हैं कि उसकी सृष्टि, उसके विचार में लगभग परमात्मा की सृष्टि के बराबर ही होती है। उसने शून्य में से एक जीते-जागते प्राणी को ला खड़ा किया है। वास्तव में मातृत्व की ओर प्रेरणा मानव की श्रेष्ठता का आदर्श है जो उसके परमात्मा के सदृश होने का एक अंश है। गूढ़तम सामाजिक भावनाओं का त्याग किये बिना, दूसरों की भलाई के लिए मानव-समाज को ध्यान में रखते हुए इस आदर्श का किस तरह प्रयोग हो सकता है उसका यह एक स्पष्टतम उदाहरण है।

दूसरी ओर एक माता इस भावना को सीमा से अधिक तूल दे सकती है कि उसका बच्चा उसका ही एक टुकड़ा है तथा अपनी संतान को अपनी वैयक्तिक श्रेष्ठता के आदर्श के अनुरंजन में उपयोग कर सकती है। वह यत्न करेगी कि उसका बच्चा उसी पर पूर्णतया आश्रित रहे। इस प्रकार वह उसके जीवन पर अपना आधिपत्य जमायगी और चाहेगी कि सदा उसी

से सम्बद्ध रहे। यहाँ पर ७० वर्ष की एक किसान बुढ़िया का मैं उदाहरण देता हूँ। उसका लड़का ४० वर्ष की उम्र में उसीके साथ रह रहा था। न्यूमोनिया के रोग ने दोनों को एक साथ दबोच लिया। इस रोग से माता तो उन्मुक्त हो गई, किन्तु लड़के को हस्पताल में ले जाना पड़ा और वहाँ वह मर गया। जब उसकी मृत्यु की सूचना माता को दी गई तो उसने उत्तर दिया—"मैं हमेशा ही जानती थी कि मैं अपने लड़के को पालते-पोसते हुए बचा न सकूँगी।" अपने लड़के की सारी जिन्दगी के लिए ही वह अपना दायित्व अनुभव करती थी, उसने अपने लड़के को हमारे सामाजिक जीवन का बराबर का भागी बनाने की कभी कोशिश नहीं की। अब हम समझ सकते हैं कि जब एक माता अपने बच्चे के साथ उत्पन्न हुए सम्बन्धों को विस्तृत करने का यत्न नहीं करती और उसे अपनी परिस्थिति के शेष भाग में समता का सहयोग करना नहीं सिखाती तो इसमें कितनी भारी गलती सन्निहित है।

माताओं के सम्बन्ध सीधे-सादे नहीं होते और उनके अपने बच्चों से सम्बन्ध को भी अत्यधिक तूल नहीं देना चाहिए, खुद उनके लिए और दूसरों के लिए यही बेहतर है। किसी एक समस्या पर ही अपेक्षातर अधिक बल दिये जाने पर शेष सब समस्याएं ओझल हो जाती हैं। वह समस्या भी जिससे हम उलझ रहे हैं उतनी सफलतापूर्वक नहीं सुलझाई जा सकती, जितना कि उस पर कम ध्यान केन्द्रित होने पर सम्भव था। माता के सम्बन्ध अपने बच्चों से, अपने पति से और अपने चारों ओर के सामाजिक जीवन से होते हैं। इन तीनों सम्बन्धों को बराबर का ध्यान मिलना चाहिए; तीनों प्रश्नों का सहज और समझ-बूझ से सामना किया जाना चाहिए। यदि एक माता केवल बच्चों में ही अपना ध्यान केन्द्रित कर दे तो वह उनके

अधिक लाड-प्यार में बिगड़ जाने को रोकने में असमर्थ हो जायगी। उनके लिए स्वतन्त्र जीवन और दूसरों से सहयोग करने की क्षमता के विकास में यह बहुत कठिनताएँ पैदा कर देगी। सफलता पूर्वक अपने साथ बच्चों का सम्बन्ध स्थापित करने के बाद उसका अगला कर्तव्य है कि उसकी दिलचस्पी को उसके पिता तक विकसित करे। यदि स्वयं ही पिता में उसकी दिलचस्पी नहीं है तो यह कर्तव्य-पूर्ति प्रायः पूर्ण रूप से असम्भव जान पड़ेगी। उसे बच्चे की दिलचस्पी को उसके चारों ओर के सामाजिक जीवन की ओर अर्थात् परिवार के दूसरे बच्चों, मित्रों, सम्बन्धियों और साधारणतया मनुष्य-मात्र में भी उत्पन्न करना है। इस प्रकार माता का कर्तव्य द्विमुखी है। उसने बच्चे को एक विश्वसनीय साथी का पहला अनुभव देना है और फिर इस विश्वास और मैत्री के दायरे को इस हद तक फैलाने के लिए तैयार रहना है कि वह सारे मानव-समाज को उस दायरे के अन्तर्गत कर सके।

यदि माँ बच्चे की दिलचस्पी को केवल अपने तक ही सीमित रखने में लगी है तो पीछे बच्चा दूसरों में दिलचस्पी को उत्पन्न करने के सब प्रयत्नों को नापसन्द करेगा। सहारे के लिए वह सदा माता की ओर ही देखेगा और जिन्हें माता का ध्यान बटाने का हेतु समझेगा उन्हें वह शत्रुवत् मानने लग जायगा। उसकी माता द्वारा अपने पति में अथवा परिवार के दूसरे बच्चों में दिखाई गई जरा भी दिलचस्पी को वह अपने अधिकारों पर चोट समझेगा और कुछ ऐसा दृष्टिकोण बना लेगा—"मेरी माता पर केवल मेरा ही अधिकार है, किसी दूसरे का नहीं।" प्रायः सब ही अर्वाचीन मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने इस परिस्थिति को गलत समझा है। उदाहरण के लिए फ्रायड की पितृ-द्वेषमूलक प्रवृत्ति (ओडियस काम्प्लेक्स) के सिद्धान्त

में यह माना जाता है कि बच्चों में अपनी माताओं से प्रेम करने की प्रवृत्ति, उनसे विवाह कर लेने की इच्छा और अपने पिताओं से घृणा करने, उन्हें मार देने की इच्छा रहती है। यदि हम बच्चों के विकास को ठीक प्रकार समझ सकते तो इस तरह की गलती कभी सम्भव नहीं थी। पितृ-द्वेषमूलक प्रवृत्ति केवल उसी बच्चे में दिखलाई दे सकती है, जिसकी इच्छा अपनी माता के समस्त ध्यान पर हावी हो जाने की हो और इसके कारण शेष सभी से वह पिण्ड छुड़ाना चाहता हो। इसकी इच्छा यौन-मूलक नहीं है। यह इच्छा तो माता पर शासन करने की, उस पर पूर्णरूप से वश पाने की और उसे महज एक सेविका में बदल देने की इच्छा है। ऐसी इच्छा केवल उन्हीं बच्चों में हो सकती है, जिन्हें कि माताओं ने लाड-प्यार से बिगाड़ दिया है और जिनकी मैत्री-भावना में शेष जगत को कोई स्थान नहीं मिला है। बहुत ही कम मामलों में ऐसा हुआ है कि एक बच्चे ने जो केवल अपनी माता से ही सम्बद्ध रहा है, प्रेम और विवाह के प्रयत्नों का केन्द्र अपनी माँ को बनाया हो। परन्तु ऐसे दृष्टिकोण का यह अर्थ होगा कि वह माता को छोड़कर किसी भी दूसरे से किसी भी प्रकार के सहयोग की कल्पना तक नहीं कर सकता। माता के सिवा कोई दूसरी स्त्री भी उसी प्रकार झुकी रह सकती है, इसका विश्वास नहीं किया जा सकता। इस प्रकार पितृ-द्वेष मूलक प्रवृत्ति (ओडियस काम्प्लेक्स) एक गलत शिक्षा की नकली उपज के समान होगी। इसमें हमें यह अनुमान लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है कि बच्चे में विरासत में प्राप्त हुए परिवार के प्रति कामुकता के भाव हैं अथवा इस प्रकार की ही किसी अन्य मूल से उसकी यौन-प्रवृत्ति का कोई सम्बन्ध है।

ऐसा बच्चा, जिसे माता ने केवल अपने से ही सम्बन्धित

किया है जब ऐसी स्थिति में आ पड़े जहाँ कि उसका माता से कोई सम्बन्ध न रहे, उसके ऊपर कठिनाइयाँ शुरू हो जाती हैं। उदाहरण के लिए—जब वह स्कूल जाय अथवा बाहर जाकर बाग में बच्चों के साथ खेले तो उसका आदर्श हर समय अपनी माता से ही सम्बन्धित रहने का बना रहेगा। जब कभी वह माँ से अलग होगा बुरा मानेगा। हमेशा उसकी अभिलाषा यही होगी कि अपने साथ वह माता को भी घसीटता रहे और उसके ध्यान पर छाया रहे तथा अपनी ओर ही आकर्षित रखे। इसके लिए उसके प्रयोगार्थ कितने ही साधन हैं—वह अपनी माँ की आँखों का तारा बन सकता है जो कि सदा निर्बलताप्रिय और उसकी सहानुभूति का इच्छुक बना रहे। यह दिखाने के लिए कि उसको दूसरों के ध्यान की कितनी आवश्यकता है, ज़रा-सी अव्यवस्था से वह रोने लगेगा अथवा बीमार पड़ जायगा। दूसरी ओर उसमें अपना क्रोध दिखाने की प्रवृत्ति हो सकती है। ध्यान में रहने के उद्देश्य से ही वह आज्ञा-पालन नहीं करेगा अथवा अपनी माता से लड़ पड़ा करेगा। इस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करने वाले बच्चों में हमें हज़ारों भेद समस्याजनक बच्चों के मिलते हैं जो कि माताओं का ध्यान आकर्षित करने के लिए उनसे हर समय संघर्ष करते रहते हैं।

जिन साधनों से उन्हें दूसरों का ध्यान आकर्षित करने में सफलता मिलती है, उनका शीघ्र ही पता लगा लेने में बच्चे अनुभवी हो जाते हैं। लाडले बच्चों को अकेले छोड़े जाने का, विशेषकर अन्धेरे में छोड़े जाने का भय अक्सर बना रहता है। उन्हें असल में अन्धकार का भय नहीं होता, परन्तु वह इस भय का अपनी माताओं को अपने समीपतर खींचने में उपयोग करते हैं। इस प्रकार का एक लाडला बच्चा हमेशा अन्धकार में

ते पड़ता था। एक रात को जबकि उसकी माँ उसके रोने की आवाज सुनकर आई तो उसने पूछा—"तुम डरते क्यों हो ?" उसने उत्तर दिया, "क्योंकि इतना अँधेरा है।" किन्तु अब तक उसकी माता उसके व्यवहार का वास्तविक अर्थ समझ चुकी थी इसलिए उसने फिर पूछा, "क्या मेरे आने के बाद अन्धेरा कम हो गया है ?" स्वयं अन्धकार का इतना महत्व नहीं है, उसका अन्धकार से डरने का एक यही मतलब था कि वह अपनी माँ से बिछुड़ने को नापसन्द करता था। यदि किसी ऐसे बच्चे को उसकी माँ से अलग कर दिया जाय तो उसकी सब भावनाएँ, सारी शक्ति और उसके सब मानसिक प्रयत्न ऐसी स्थिति तैयार करने में लग जाते हैं जिससे उसकी माँ को उसके पास आना पड़े और उससे सम्बन्धित हो जाना पड़े। चीखकर, आवाज लगाकर, सोने में असमर्थता प्रगट करके अथवा किसी दूसरी तरह अपने आपको दुखी सिद्ध करके वह उसको अपने पास खींच लेने का प्रयत्न करेगा। एक ऐसा साधन, जिसकी ओर शिक्षकों और मनोवैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित होता रहा है, भय है। वैयक्तिक मनोविज्ञान में अब हम डर के कारण की खोज में नहीं लगे रहते वरन् उसके उद्देश्य का पता लगाने की कोशिश करते हैं। सभी लाडले बच्चे भय से पीड़ित होते हैं। भय के द्वारा ही वह दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करा सकते हैं और वह भय की इस भावना को अपनी जीवन-प्रणाली में बदल लेते हैं। वह इसका उपयोग माता से पुनः सम्बन्धित होने के उद्देश्य की पूर्ति में करते हैं। एक भयातुर बच्चा इस प्रकार का लाडला बच्चा होता है जो फिर से लाड-प्यार की कामना रखता है।

कभी-कभी ऐसे लाडले बच्चों को रात के समय दुःस्वप्न दीखते हैं और वह नींद में ही चीख पड़ते हैं। यह एक सुविज्ञात

लक्षण हैं; परन्तु जब तक नींद को जागरण-काल से विरोधी अवस्था समझा जाता रहा, इसे समझना असम्भव था। वह गलती थी, सोना और जागना विरोधी अवस्थाएँ नहीं हैं, वरन् भिन्न अवस्थाएँ हैं। अपने स्वप्न-काल में एक बच्चा उसी प्रकार व्यवहार करता है, जिस प्रकार कि दिन में, परिस्थितियों को अपने पक्ष में पलट लेने का उसका उद्देश्य उसके सारे शरीर और मन को प्रभावित करता है। कुछ काल के परीक्षण और अभ्यास के पश्चात् वह अपने ध्येय तक पहुँचने के सर्वाधिक सफल साधनों को प्राप्त कर लेता है। उसके सोने के समय के विचारों में भी उसके मन में ऐसे चित्र और ऐसी स्मृतियाँ आती हैं जो कि उसके उद्देश्य के लिए उपयुक्त होती हैं। एक समस्या-जनक बच्चा कुछ अनुभवों के बाद यह जान लेता है कि यदि वह अपनी माता से पुनः सम्बन्धित होना है तो ऐसे विचार जो कि पूर्णतः भयाक्रान्त कर सकें बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। बड़े होने पर भी इस प्रकार के बच्चे ऐसी चिन्ता उत्पन्न करने वाले स्व[illegible] की शृंखला बनाए रखते हैं। स्वप्नों में डरना, दूसरों का ध्या[न] आकर्षित करने के लिए एक सुपरीक्षित साधन है, जिसे कि [illegible] एक अभ्यास के रूप में गढ़ा जा चुका है।

चिन्ता की भावना के इस प्रकार के उपयोग का अर्थ इत[ना] स्पष्ट है कि किसी लाडले बच्चे के विषय में यह सोचना कि [illegible] कभी रात को दुखदायी नहीं होता आश्चर्य की बात होगी [illegible] ध्यान आकर्षित करने वाले चालाकी से भरे साधनों की स[ूची] बहुत बड़ी है। कुछ बच्चों को बिस्तर के कपड़े सुखजनक [नहीं] जान पड़ते, कुछ पानी मांगते रहते हैं, कुछ को चोरों का [डर] लगा रहता है और कुछ को जंगली जानवरों का डर बना र[हता] है। कुछ को तब तक नींद नहीं आती जब तक कि उनके म[ाता-] पिता उनके सिरहाने न बैठे हों। कुछ स्वप्न लेते रहते हैं,

बिस्तर से गिर पड़ते हैं और कुछ सोते हुए पेशाब कर देते हैं। एक लाडली बच्ची जिसका मैंने इलाज किया, रात को किसी प्रकार का भी कष्ट देती नहीं जान पड़ती थी। उसकी माता ने बताया कि वह रात को स्वप्न नहीं देखती, बिना जागे गहरी नींद सोती रहती है और किसी प्रकार की भी तकलीफ नहीं देती। वह केवल दिन के समय ही तंग करती है। यह काफी हैरानी की बात थी। मैंने उन सब भिन्न-भिन्न रीतियों का वर्णन किया जिनके द्वारा माता का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो सकता था तथा वह बच्चे के निकट आकर्षित हो सकती थी। परन्तु उस बच्ची में एक भी ऐसा लक्षण नहीं मिला। अन्त में मुझे इसका कारण सूझ ही गया। मैंने उसकी माता से पूछा, "यह बच्ची सोती कहाँ है ?" उसने जवाब दिया, 'मेरे साथ मेरे बिस्तर में।"

लाडले बच्चों के लिए रुग्णावस्था शरणदायक बन जाती है, क्योंकि उनसे बीमारी की अवस्था मे लाड-प्यार की हद हो जाती है। प्रायः ऐसा होता है कि ऐसा बच्चा किसी बीमारी के बाद समस्याजनक बन जाने के लक्षण प्रगट करने लगता है और शुरू में ऐसा जान पड़ता है कि बीमारी के कारण ही वह ऐसा बना। परन्तु सत्य यह है कि रोग से ठीक हो जाने के बाद वह उस विशेष देख-भाल व पूछ-ताछ को याद करता है जो कि रुग्णावस्था में की गई थी। उसकी माता अब इतना लाड-प्यार नहीं कर सकती, जितना कि उस समय करती थी, इसलिए वह उसका बदला समस्याजनक बन कर लेता है। कभी-कभी ऐसा बच्चा जिसने यह देखा हो कि बीमार होने पर एक बच्चा किस तरह दूसरों के ध्यान का केन्द्र बन गया है यह चाहने लगेगा कि वह स्वयं भी बीमार पड़ जाय और बीमारी प्राप्त करने के लिए वह उस बीमार बच्चे के गहरे सम्पर्क में भी आने लगेगा।

एक लड़की निरन्तर चार बरस तक हस्पताल में रही और वहाँ डाक्टरों और नर्सों की अत्यधिक देख-भाल से बिगड़ गई। शुरू में घर लौटने पर उसके माता-पिता भी उसे बिगाड़ते रहे। परन्तु कुछ सप्ताहों के बाद उनके ध्यान में कमी हो गई। जब कभी भी उसकी इच्छा की चीज देने से उसको इनकार किया जाता था वह मुख मे अंगुली डाल लेती थी और कहती थी—"मैं कितनी देर हस्पताल मे रही हूं।" इस प्रकार वह दूसरों को याद दिलाया करती थी कि वह बीमार रही है और उसकी इच्छा उसी अनुकूल परिस्थिति को चालू रखने की थी जिसमें कि वह अपने को पहले पाती थी। हम ऐसा ही व्यवहार बड़ी आयु के उन लोगों में पाते हैं जो प्रायः अपनी बीमारियों की अथवा अपने आपरेशनों की कहानी सुनाना पसन्द करते हैं। दूसरी ओर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जो बच्चे अपने माता-पिता के लिए समस्याजनक रहे हों वह किसी बीमारी के बाद ठीक हो जाते हैं और तंग नहीं करते। हम पहले देख चुके हैं कि बच्चे के लिए विकृत अंग भी फालतू बोझ के समान होते हैं। साथ मे हम यह भी देख चुके हैं कि यही बात चरित्र की खराबियों का पर्याप्त कारण बन सकती है। इसलिए हम आंगिक बाधा के हटाए जाने को ही इस परिवर्तन की व्याख्या नहीं मान सकते। एक लड़का जो कि परिवार में दूसरा बच्चा था, झूठ बोलकर, चोरी करके, घर से भागकर, क्रूर होकर, आज्ञा पालन न करके बहुत तङ्ग किया करता था। उसके अध्यापक को सूझता नहीं था कि लड़के से किस प्रकार का व्यवहार करे और उसने सम्मति दी कि लड़के को किसी सुधारगृह (रिफर्मेटरी) में भेज दिया जाय। इस वक्त लड़का बीमार पड़ गया। उसे नितम्ब यक्ष्मा (ट्यूबर्क्यूलोसिस आफ दि हिप) हो गया। छः मास तक वह प्लास्टर की पट्टी में पड़ा रहा। ठीक हो जाने के

बाद वह परिवार का सबसे अच्छा लड़का बन गया। हम यह विश्वास नहीं कर सकते, कि इस तरह का परिवर्तन उस बीमारी के कारण हुआ है। यह स्पष्ट है कि यह परिवर्तन उसमें अपनी पहली भूलों को पहिचान लेने के बाद सम्भव हुआ। उसका सदा यही विचार था कि उसके माता-पिता उसके भाई को ही ज्यादा चाहते हैं और वह इससे अपमानित अनुभव किया करता था। उसने बीमारी के दिनों में अपने को सबके ध्यान का केन्द्र पाया, सब उसकी पूछ-ताछ और सहायता करते थे। इसलिए उसमें अब इस विचार को त्याग करने की पर्याप्त बुद्धि उत्पन्न हो गई कि उसकी सदा उपेक्षा की जाती है।

यह विचार करना नितान्त गलत होगा कि माताएँ जिन भूलों को अक्सर करती हैं, उन्हें सुधारने का सबसे अच्छा ढंग, बच्चों की माताओं की देख-भाल से दूर करके उन्हें नर्सों अथवा संस्थाओं को सौंप देने में है। हम माता की स्थान पूर्ति के लिए जब कभी भी किसी दूसरे का विचार करते हैं तो हम किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश करते हैं जो कि माता के कर्तव्य निभा सके, जो बच्चे की अपने में उसी प्रकार दिलचस्पी उत्पन्न कर सके जिस प्रकार माँ करती है। बच्चे को अपनी माता को ही उचित शिक्षा देना अधिक आसान होता है। जो बच्चे अनाथालयों में रहकर बड़े होते हैं, वह प्रायः दूसरों में दिलचस्पी के भावों का अभाव प्रगट करते हैं; क्योंकि उनके सम्पर्क में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं आता जो बच्चे और शेष मानव-मात्र में व्यक्तिगत सेतु का काम दे सके। कभी-कभी संस्थाओं में पलने वाले ऐसे बच्चों के साथ, जिनका कि समुचित विकास नहीं हो रहा होता, परीक्षण किये गए हैं। ऐसे बच्चे के लिए कोई नर्स अथवा धाय खोज दी गई ताकि उसे वैयक्तिक देख-भाल व ध्यान प्राप्त हो सके अथवा उसे किसी ऐसे घर में रख दिया

गया जहाँ कि माता अपने बच्चों के साथ उसकी भी देख-भाल कर सके। यदि धाय का चुनाव ठीक हुआ हो तो इसका परिणाम सदा बच्चे के उचित विकास में प्रगट हो जाया करता है। ऐसे बच्चों को पालने का सबसे अच्छा तरीका उनके लिए माता-पिता और पारिवारिक जीवन के पूर्ण करने वाले व्यक्तियों की खोज करने में ही है; और माता-पिता से बच्चों को छीनकर हम किन्हीं ऐसे दूसरे व्यक्तियों की तलाश ही करेंगे जो उनका स्थान ले सकें। माता-पिता के प्रेम और दिलचस्पी के महत्व का ज्ञान हमें इस बात से भी होगा कि जीवन की अधिकतर असफलताएँ अनाथ, संकट, अनिच्छित बच्चों और तलाकप्राप्त दम्पतियों की सन्तान में दीख पड़ती हैं। यह सुप्रसिद्ध ही है कि एक विमाता का कार्य बहुत कठिन कार्य होता है। बच्चे प्राय: विमाता के विरुद्ध संघर्ष किया ही करते हैं। परन्तु इस समस्या का सुलझाना सम्भव है और मैंने इसमें काफी हद तक सफलता प्राप्त की है। प्राय: ऐसा देखा गया है कि स्त्री इस स्थिति को समझ नहीं पाती। सम्भवत: माता की मृत्यु के अवसर पर बच्चे पिता की ओर अधिक आकर्षित हो गए और उन्होंने उससे लाड-प्यार पाया। अब बच्चे देखते हैं कि पिता का ध्यान कम हो गया है तो वह अपनी विमाता पर हमला करने लगते हैं। वह भी सोचती है कि इस हमले का प्रत्युत्तर देना चाहिए। इस स्थिति में बच्चों को वास्तविक शिकायत का अवसर मिल जाता है। वह बच्चों को चुनौती दे देती है और उनका संघर्ष और बढ़ जाता है। बच्चे से की जाने वाली लड़ाई में सदा हार ही होगी, क्योंकि वह कभी पराजित न होगा और न ही उसे लड़ाई करके सहयोग के लिए जीता जा सकेगा। ऐसे संघर्षों में सदा निर्बल पक्ष की ही विजय हुआ करती है। उससे ऐसी बात की अपेक्षा की जाती है, जिसमें वह इनकार कर देता है, और इस

प्रकार के साधनों से यह मांग कभी पूरी नहीं हो सकती। यदि हम यह समझ जायँ कि सहयोग और प्रेम को कभी ताकत से नहीं जीता जा सकता तो दुनिया बहुत-से आवेश और निरर्थक प्रयत्नों से बची रह सकती है।

पारिवारिक जीवन में पिता का प्रदान माता के प्रदान-सा ही महत्वपूर्ण होता है। शुरू में बच्चे का सम्बन्ध पिता से इतना घना नहीं होता, परन्तु बाद में उसके प्रभाव का परिणाम दिखाई देने लगता है। हम कुछ उन खतरों की ओर पहले ही इशारा कर चुके हैं जो माता द्वारा बच्चे की दिलचस्पी पिता में विकसित करने में असमर्थ होने पर उत्पन्न हो जाते हैं। अपनी पारिवारिक भावना के विकास में बच्चे के सामने गम्भीर बाधा प्रस्तुत हो जाती है। दाम्पत्य-जीवन सुखमय न होने की स्थिति बच्चे के लिए बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकती है। बच्चे की माता पिता को पारिवारिक जीवन के अन्तर्गत मानने में शायद अपने आपको असमर्थ पाती हो, शायद उसकी ऐसी इच्छा हो कि बच्चा केवल उसीका बन कर रहे। सम्भवतः माता-पिता दोनों ही अपने व्यक्तिगत संघर्ष में बच्चे का शतरंज के मोहरों की तरह प्रयोग करते हों। दोनों चाहते हों कि बच्चा उन्हींसे सम्बन्धित रहे, दूसरे से अधिक उन्हीं को प्यार करे। जब बच्चे अपने माता-पिता को झगड़ता पाते हैं तो उन दोनों को लड़वाने में बहुत चालाक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार यह देखने के लिए माता-पिता में एक ऐसी प्रतियोगिता शुरू हो सकती है कि बच्चे पर कौन बेहतर शासन कर सकता है अथवा कौन उसे अधिक बिगाड़ सकता है। चारों ओर ऐसे वातावरण से घिरे बच्चे को सहयोग में शिक्षा देना असम्भव है। वह दूसरे लोगों में सहयोग के जिस पहले उदाहरण का अनुभव करता है वह अपने माता-पिता का सहयोग होता है। यदि उनमें स्वयं

ही सहयोग की भावना कम हो तो वे उसे सहयोगी होने की शिक्षा देने की कल्पना नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त बच्चे अपने माता-पिता के विवाह-सम्बन्ध से ही विवाह और पुरुष-स्त्री के साहचर्य के विषय में अपना पहला विचार बनाते हैं। यदि उनके इन प्रथम विचारों का संशोधन न किया जाय तो दुखद विवाह-सम्बन्धों की सन्तानें विवाह के विषय में निराशावादी दृष्टिकोण लेकर बड़ी होंगी। बड़ा हो जाने पर भी उनका यही विचार रहेगा कि विवाह का परिणाम अन्त में बुरा ही होता है। उनका यत्न होगा कि स्त्रियों से बचकर रहा जाय अथवा उनका यह मत होगा कि इस दिशा में वह जरूर असफल हो जायंगे। इस प्रकार एक बच्चा, जिसके माता-पिता का विवाह सामाजिक जीवन का एक सहयोगी अंश, सामाजिक जीवन की उपज और सामाजिक जीवन के लिए तैयारी के समान न हो, गम्भीर असुविधा का भागी बनेगा। विवाह-सम्बन्ध का अर्थ है पारस्परिक भलाई, सन्तान और समाज की भलाई तथा दो व्यक्तियों का साहचर्य। यदि यह इनमें से किसी भी पहलू में असफल रहता है तो इसका यह अभिप्राय होता है कि वह जीवन की आवश्यकताओं से एकरस नहीं हो पाया।

क्योंकि विवाह एक प्रकार का साहचर्य ही है इसलिए दम्पति में किसी एक सदस्य को सर्वोच्च नहीं बन जाना चाहिए। इस बात पर हम जितना ध्यान देते हैं उसे कहीं अधिक दिया जाना चाहिए। पारिवारिक जीवन के किसी भी व्यवहार में उच्चपद को बलप्रयोग की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। यदि कोई एक सदस्य दूसरे से विशेष महत्वपूर्ण अथवा प्रमुख माना जाता है, तो यह दुर्भाग्य की बात है। यदि पिता क्रोधी है और वह शेष परिवार पर हावी होने का प्रयत्न करता है तो बच्चे इस बात का ग़लत ख्याल बना लेंगे कि एक पुरुष से क्या अपेक्षित

होता है। लड़कियां और भी अधिक हानि उठायंगी। वह बाद के जीवन में पुरुषों का क्रूरतामय चित्रण किया करेगी। उन्हें विवाह का अर्थ एक प्रकार की दासता और पराधीनता जान पड़ेगा। कई बार वह अपने को यौन-विकृति (पर्वर्शन) के द्वारा पुंस्त्व के विरुद्ध सुरक्षित रखने का यत्न करेंगी। यदि परिवार में माता प्रमुख हैं और दूसरे सदस्यों को रिझाती रहती हैं तो हालात पलट जायँगे। सम्भवतः लड़कियाँ उसकी नकल उतारेंगी और स्वयं तेज-मिजाज तथा नुक्ताचीनी करने वाली बन जायँगी। इस दशा में लड़के आत्म-रक्षा करते हुए रहेंगे, आलोचना से डरेंगे तथा वश में होने के प्रत्येक प्रयत्न से सतर्क रहा करेंगे। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक माता ही क्रूरता पर नहीं उतर आती किन्तु बहनें, चाचियाँ सभी इस प्रयत्न में लगी रहती हैं कि लड़का अपनी जगह से टस-से-मस न हो सके। इस प्रकार लड़का अपने में ही सीमित रहने लगता है और कभी आगे बढ़ने या सामाजिक जीवन में सम्मिलित होने की इच्छा नहीं करता। उसे हमेशा डर रहेगा कि सभी स्त्रियाँ इस प्रकार ही रिझाने वाली तथा दूसरों की निन्दा करने वाली हुआ करती हैं। इस प्रकार उसकी इच्छा कुल स्त्री-जाति से दूर रहने की रहेगी। कोई भी अपनी आलोचना सुनना पसन्द नहीं करता, परन्तु कोई व्यक्ति आलोचना से बचे रहने को ही अपने जीवन की मुख्य प्रणाली बना ले तो समाज से उसके सब सम्बन्धों में बाधा पड़ने लगेगी। प्रत्येक घटना को वह अपने दृष्टिकोण के अनुसार ही देखेगा और सोचता रहेगा, "क्या मैं जीतने वाला हूँ या जीता गया हूँ ?" ऐसे लोगों को जो कि दूसरों के प्रत्येक सम्बन्ध को अपनी विजय या पराजय का रूप देते हैं, किसी भी प्रकार का किसीका साथ निभाना असम्भव हो जायगा।

परिवार में एक पिता के कर्तव्यों का कुछ शब्दों में इस प्रकार का वर्णन किया जा सकता है। उसका कर्तव्य है कि अपनी स्त्री अथवा सन्तान या समाज के प्रति अपने को एक अच्छा साथी साबित करे। जिन्दगी की तीन समस्याओं—व्यवसाय, मैत्री और प्रेम का उसे अच्छे ढंग से सामना करना चाहिए और उसे परिवार की देखभाल तथा रक्षा में अपनी स्त्री के साथ समता के तल पर रहकर सहयोग करना चाहिए। उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि पारिवारिक जीवन की सृष्टि में स्त्री को किसी भी दशा में कम महत्व का नहीं समझा जा सकता। उसका कर्तव्य बच्चों की माता को उसके सिंहासन से गिराना नहीं, परन्तु उसके साथ मिलकर काम करना है। रुपये-पैसे के विषय में हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि यदि परिवार को आर्थिक आश्रय पिता से ही मिलता है तो भी यह एक साझे कर्तव्य का हिस्सा ही है। उसे यह कभी नहीं प्रगट करना चाहिए कि वह रुपया-पैसा देता है और दूसरे लेते हैं। एक अच्छे दाम्पत्य-जीवन में इस बात को कि परिवार में रुपया-पैसा पिता द्वारा आता है परिवार के श्रम-विभाजन का परिणाम ही समझा जाता है। बहुत से पिता अपनी आर्थिक स्थिति को परिवार पर शासन करने का साधन बना लेते हैं। एक परिवार में कोई भी शासक नहीं होना चाहिए और असमानता के विचार पैदा करने वाले प्रत्येक अवसर से बचा रहना चाहिए। हर एक पिता को यह सचाई जान लेनी चाहिए कि हमारी संस्कृति ने आदमी की अधिकारयुक्त स्थिति पर अधिक बल दे दिया है। परिणाम-स्वरूप विवाह के समय तक उसकी स्त्री, कुछ हद तक, शासित होने और हीनतर पद में गिराए जाने से डरी हुई रहती है। उसे यह जान लेना चाहिए कि उसकी स्त्री केवल स्त्री होने के कारण अथवा इस कारण कि वह उसी

ढंग से परिवार का पालन नहीं करती जिस तरह कि वह करता है, किसी प्रकार भी उससे निचले स्तर पर नहीं है। स्त्री परिवार का पालन चाहे धन-प्रदान से करे अथवा नहीं, यदि पारिवारिक जीवन एक सच्चे सहयोग के समान है तो यह प्रश्न ही नहीं उठेगा कि कौन पैसा कमाता है और पैसा किस-का है।

अपने बच्चों पर पिता का प्रभाव इतना महत्वपूर्ण होता है कि सारे जीवन-भर बहुत-से बच्चे उसे या तो अपना आदर्श या सबसे बड़ा शत्रु समझने लगते हैं। दण्ड, विशेषकर शारीरिक दण्ड बच्चों के लिए विशेष हानिकारक होता है। कोई भी ऐसी शिक्षा जो एक मित्र की तरह नहीं दी जा सकती, गलत शिक्षा है। दुर्भाग्यवश प्राय. अधिकतर परिवारों में पिता को ही बच्चों को दण्ड देने का कार्य सौंपा जाता है। इसे दुर्भाग्य की बात समझने के बहुत-से कारण हैं। एक तो इससे माता का यह विश्वास प्रगट होता है कि वास्तव में स्त्रियाँ बच्चों को शिक्षा देने में असमर्थ होती हैं और वास्तव में वह अबलाएँ होती हैं, जिन्हें कि सहायता के लिए एक दृढ़तर पुरुष की आवश्यकता होती है। यदि कोई माता अपने बच्चों से यह कहती है, "तुम ठहरो. पिता को घर आने दो।" इससे उन्हें इस बात के लिए तैयार करती है कि वह जीवन में पुरुषों को सर्वोच्च अधिकारी और वास्तव में शक्तिमान समझें। दूसरे इससे पिता और बच्चों के बीच का सम्बन्ध बिगड़ जाता है और वह उसे एक अच्छा मित्र समझने की जगह उससे डरने लगते हैं। शायद कुछ माताएँ इस बात से डरती हैं कि यदि वह बच्चों को स्वयं दण्ड देंगी तो वह उनके प्यार में त्रुटि करेंगी। परन्तु इसका हल पिता द्वारा दण्ड दिलाना नहीं। बच्चे माता को इसलिए कम सराहना नहीं देंगे कि उसने

इकाई है तथा परिवार के बाहर भी ऐसे स्त्री पुरुष और साथी मनुष्य रहते हैं जिनपर कि विश्वास किया जा सकता है।

यदि पिता के सम्बन्ध अपने माता-पिता, अपनी बहनों और भाइयों से अच्छे हैं तो यह सहयोग करने की क्षमता का एक अच्छा लक्षण है। यह ठीक है कि अपने परिवार से बाहर उसे स्वतन्त्र होकर रहना चाहिए, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपने निकटतम सम्बन्धियों को नापसन्द करने लगे अथवा उनसे बिगड़ बैठे। कभी-कभी दो ऐसे व्यक्ति विवाह कर लेते हैं जो कि अभी अपने माता-पिता पर ही आश्रित होते हैं और वह परिवार से बांधने वाले बन्धनों का अधिक मूल्यांकन करते रहते हैं। जब कभी वह 'घर' की बात करेंगे तो उनका इशारा अपने माता-पिता के 'घर' की ओर होगा। यदि वह इसी विचार से उलझे रहेंगे, कि उनके माता-पिता ही उनके परिवार के केन्द्र हैं तो वह अपने वास्तविक पारिवारिक जीवन की नींव नहीं रख सकेंगे। यह प्रश्न तो सब सम्बन्धित व्यक्तियों के सहयोग के सामर्थ्य का है। कभी किसी व्यक्ति के माता-पिता ईर्षालु होते हैं, वह अपने लड़के के जीवन के विषय में सभी कुछ जानना चाहते हैं और नये परिवार के लिए कठिनाइयाँ पैदा कर देते हैं। उसकी स्त्री अनुभव करती है कि उसको उचित मान नहीं मिल रहा, इसलिए वह अपने पति के माता-पिता के हस्तक्षेप पर क्रुद्ध हो जाती है। इस प्रकार का व्यवहार प्रायः वहाँ अधिक होगा, जहाँ किसी व्यक्ति ने अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध विवाह किया हो। संभव है कि इस बात में उसके माता-पिता ठीक या गलत रहे हों। यदि वह अपने लड़के के चुनाव में असन्तुष्ट हैं तो विवाह के पहले अपना विरोध जता सकते हैं, परन्तु विवाह के बाद उनका केवल एक ही कर्तव्य है कि विवाह की सफलता के लिए

जो कुछ उनसे बन सकता है करें। यदि पारिवारिक भेद-भावों से बचकर नहीं रहा जा सकता, तो पति को चाहिए कि उन कठिनाइयों को समझे और उनके विषय में चिन्तातुर न रहे। वह 'माता-पिता के विरोध' को उनकी एक गलती के समान समझे और यह सिद्ध करने की पूरी कोशिश करे कि लड़का ही ठीक था। इस बात की आवश्यकता नहीं है कि पति और स्त्री सदा अपने माता-पिता की इच्छाओं के सामने झुके रहें। परन्तु, यदि उन दोनों में सहयोग हो और स्त्री यह अनुभव कर सके कि उसके पति के माता-पिता के मन में उसकी भलाई के ही विचार हैं केवल अपनी ही भलाई के नहीं तो स्पष्ट ही स्थिति सहज और सरल हो सकेगी।

सब लोग जिस कर्तव्यपूर्ति की निश्चित रूप से पिता से ही अपेक्षा करते हैं, वह व्यवसाय की समस्या का हल खोजना है। यह आवश्यक है कि वह किसी व्यवसाय के लिये शिक्षित हो और अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण कर सके। सम्भव है इसमें उसे उसकी स्त्री की और शायद कुछ काल के पश्चात् अपनी सन्तान की सहायता मिल सके। परन्तु हमारी आज की सांस्कृतिक परिस्थिति में आर्थिक दायित्व आदमी ही पर पड़ता है। इस समस्या के सुलझाव का अर्थ है कि वह काम करे और साहसपूर्ण रहे, अपने व्यवसाय को भली-भांति समझे तथा उसके लाभ व हानि को पहचाने; अपने व्यवसाय के दूसरे साथियों से सहयोग कर सके और उनकी सद्भावना प्राप्त कर सके। इसका अर्थ और भी बहुत कुछ है। अपने व्यवहार से वह उस राह का निर्देश कर रहा है जिस पर चलकर उसके बाल-बच्चे व्यवसाय की समस्या का सामना कर सकेंगे। इसलिए उसका कर्तव्य है कि इस समस्या — हल खोजे, ऐसे काम-काज की तलाश कर ले जो

मानव-मात्र के लिए उपयोगी हो और उसकी भलाई में संवृद्धि करे। इस बात का अधिक महत्त्व नहीं है कि वह अपने व्यवसाय को ही उपयोगी समझे, परन्तु महत्त्व इस बात का है कि वह व्यवसाय 'वास्तव में उपयोगी' हो। इस विषय में उसके मन्तव्य को सुनने की जरूरत नहीं है। यदि वह अपने को आत्म-दम्भी (इगोइस्ट) समझता है तो वह दयनीय है, परन्तु साथ में यदि वह कोई ऐसा काम-काज कर रहा है जिससे हमारे सामे भले में वृद्धि होती है तो हानि का भय अधिक नहीं है।

अब हम प्रेम की समस्या के सुलझाने के विषय में अर्थात् विवाह और सुखप्रद तथा उपयोगी पारिवारिक जीवन बनाने के विषय में विचार करते हैं। यहां पति से इस बात की मुख्य अपेक्षा है कि अपने साथी में उसकी पूरी दिलचस्पी हो, और यह पहचान तो बहुत सरल है कि वह उसमें पूर्ण दिलचस्पी ले रहा है या नहीं। यदि उसे दिलचस्पी है तो वह अपने साथी के कामों में दिलचस्पी लेता है और उसकी भलाई को अपना स्वाभाविक उद्देश्य बना लेता है। दिलचस्पी का हाथ केवल स्नेह से ही सिद्ध नहीं होता। स्नेह के भी कितने ही प्रकार होते हैं और हमारे लिए सब कुछ समुचित होने की यही पर्याप्त गवाही नहीं है। उसे अपनी स्त्री का साथी भी बनना चाहिए और उसका जीवन सहज तथा उच्च बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए तथा इसमें उसको प्रसन्नता अनुभव करनी चाहिए। इनमें असली सहयोग तो तभी सम्भव है जब कि दोनों साथी साझी भलाई को अपनी व्यक्तिगत भलाई से ऊँचा स्थान दें। प्रत्येक साथी का अपने से अधिक दूसरे में दिलचस्पी लेना आवश्यक है।

बच्चों के सामने एक पति को अपनी पत्नी के प्रति स्पष्ट रूप से अपना प्रेम नहीं जतलाना चाहिए। यह ठीक है कि

पति और पत्नी के प्यार की तुलना उनके बच्चों के प्रति प्यार से नहीं की जा सकती। यह दोनों प्यार बिलकुल भिन्न-भिन्न चीजें हैं और उनमें से कोई भी एक-दूसरे को कम नहीं कर सकता। यदि माता-पिता एक-दूसरे के प्रति प्रेम में बहुत स्पष्ट हों तो कभी-कभी बच्चे यह अनुभव करते हैं कि उनका प्यार-क्षेत्र बिलकुल ही संकुचित हो गया है। इससे वह ईर्षालु हो उठते हैं और अपना विरोध दर्शाना चाहते हैं। परस्पर यौन-सम्बन्ध को इतनी कम गम्भीरता से नहीं देखना चाहिए। इसी प्रकार पिता अपने लड़कों को और माता अपनी लड़कियों को यौन-विषयों की व्याख्या करते हुए इस बात का ध्यान रखें कि बच्चों को खुद ही तत्सम्बन्धित सूचनाएं विस्तार से न देकर केवल उतना ही बताया जाय जितना कि बच्चा समझना चाहता है और अपने विकास की स्थिति के अनुसार समझ सकता है। मेरा विश्वास है कि हमारे आज के युग में बच्चों को उनकी समझ-बूझ से कहीं अधिक दिलचस्पियाँ और विकार जगा देने की, जिनके लिए कि वह उद्यत नहीं होते, प्रवृत्ति पाई जाती है। इस प्रकार यौन विषय का महत्व कम हो जाता है और ऐसा समझा जाने लगता है मानो वह एक खेल है। यह चलन उस पुराने चलन से कोई बहुत अच्छा नहीं है जब कि बच्चों से सब प्रकार का यौन-ज्ञान छिपाया जाता था और इस विषय में ईमानदारी नहीं बरती जाती थी। इस विषय में यह समझ लेना उत्तम होगा कि बच्चा उसी समस्या को जानना और उत्तर पाना चाहता है, जिस पर कि वह स्वयं विचार कर रहा हो। उस पर वह सब ज्ञान नहीं लाद देना चाहिए जिसे कि हम अपने मापदण्ड से सभी के लिए जानना आवश्यक समझते हैं। हमें उसके इस विश्वास और भावनाओं को सुरक्षित रखना है कि हम उससे सहयोग कर रहे हैं और उसकी

समस्याओं का हल ढूँढने के लिए सहायता देने में हमें दिल-चस्पी है। यदि हमारा यही रुख हो तो हम अधिक गलती नहीं कर सकते। कुछ माता-पिताओं का यह डर कि उनके बच्चे अपने साथियों से हानिकारक यौन-व्याख्याएं सुन लेंगे बहुत न्याय-संगत नहीं होता। एक ऐसे बच्चे को जिसे सहयोग और स्वतन्त्रता की अच्छी शिक्षा मिली है अपने मित्रों की बातों से कभी कोई हानि नहीं पहुंच सकती और प्रायः इन मामलों में बच्चे अपने बड़ों से अधिक नाजुक हुआ करते हैं। एक बच्चे को, जो कि पहले ही गलत दृष्टिकोण को अपनाने के लिए तैयार नहीं है, कुसंग से मिली इस प्रकार की व्याख्याएं हानि नहीं पहुंचा सकती।

हमारे आज के समाज ने आदमियों को, सामाजिक जीवन का अनुभव करने, समाज की विभिन्न प्रणालियां का उनके हानि-लाभसहित ज्ञान करने और अपने देश व संसार में पाये जाने वाले नैतिक सम्बन्धों से परिचित होने के अपेक्षाकृत अधिक अवसर दिये जाते हैं। दुर्भाग्यवश उनकी नक्रियता का क्षेत्र स्त्रियों की सक्रियता के क्षेत्र से कहीं बड़ा होता है। इस कारण इन समस्याओं के सम्बन्ध में अपनी स्त्री व अपने बच्चों को ज्ञान-मन्त्रणा देने का कर्तव्य पिता का हो जाता है। उसके लिए यह उचित नहीं कि अपने वृहत्तर अनुभव के विषय में अभिमान करे अथवा उसका अनुचित लाभ उठाए। वह परिवार का शिक्षक नहीं है, इसलिए उसे चाहिए कि जैसे एक मित्र अपने मित्र को मन्त्रणा दिया करता है उसी प्रकार बच्चों से विरोध-भावना जगाने से बचते हुए प्रसन्नता के साथ उनको मन्त्रणा आदि दिया करे। यदि उसकी स्त्री की ओर से, जिसे कि शायद सहयोग की उचित शिक्षा नहीं मिली है, किसी प्रकार का विरोध प्रदर्शित किया जाए तो उसे अपने दृष्टिकोण पर ही बल देना

क्या आपको मालूम है कि दसवीं पीढ़ी के प्रत्येक सदस्य के पाँच सौ से अधिक पूर्वज ऐसे होंगे जिनमें कि आप जितना ही अंश होगा ? पांच सौ दूसरे परिवार उस पर अपना अपनत्व दरसा सकेंगे। क्या उस दशा में भी यह आपके वंशज रह जायेंगे ? हमें यहाँ इस सत्य का एक और उदाहरण देखते हैं कि हम अपने वंशजों के लिए जो कुछ भी करते हैं वह सारे समाज के लिए ही होता है। इस प्रकार मानव से जो हमारे सम्बन्ध हैं, हम उनसे पल्ला नहीं छुड़ा सकते। [illegible] यदि परिवार में कोई विशेषाधिकारी नहीं होता तब तो वहाँ वास्तविक सहयोग होना आवश्यक है। बच्चों के शिक्षा-सम्बन्धित सब प्रश्नों पर पिता और माता को मिलकर और एक साथ होकर काम करना आवश्यक है। यह बात बहुत ही महत्व रखती है कि माता-पिता बच्चों में से किसी एक के प्रति अधिक झुकाव प्रगट न करें। इस प्रकार के विशेष झुकाव की हानियों का वर्णन जितना भी किया जाय थोड़ा है। बचपन का प्रायः प्रत्येक निरुत्साह इसी भावना से उत्पन्न होता है कि किसी दूसरे को बेहतर समझा जाता है और अधिक पसन्द किया जाता है। कभी-कभी इन भावों के लिए कोई युक्तियुक्त कारण नहीं होता, परन्तु जहां वास्तविक समानता का व्यवहार हो वहां इस भाव के विकास को कोई अवसर नहीं मिलना चाहिए। जहाँ लड़कों को लड़कियों से बेहतर समझा जाता है वहां लड़कियों में हीनभाव का पैदा होना अवश्यंभावी है। बच्चों की भावनाएं बहुत सूक्ष्म होती हैं और एक बहुत अच्छा बच्चा भी इस बात का सन्देह करके कि मुझसे दूसरों को अधिक पसन्द किया जाता है जीवन की किसी बिलकुल गलत दिशा की ओर अग्रसर हो सकता है। कभी-कभी कोई एक बच्चा दूसरों की अपेक्षा तेजी से अथवा अधिक पसन्द आनेवाले तरीके से विकास करता है।

ऐसे अवसर पर उस बच्चे के लिए अधिक पसन्दगी न प्रगट करना कठिन हो जाता है। माता-पिता के लिए आवश्यक है कि वह इतने अनुभवी अथवा चतुर अवश्य हों कि इस प्रकार का झुकाव प्रगट करने से बचे रह सकें। जिस बच्चे का विकास बेहतर होगा वह दूसरे बच्चों पर छा जायगा और उन्हें निरुत्साहित कर देगा, उनमें ईर्ष्या के भाव और अपनी क्षमता के विषय में सन्देह पैदा कर देगा। इस प्रकार उनके सहयोग की सामर्थ्य भी नष्टप्राय होने लगेगी। केवल यह कहना काफी नहीं है कि किसी बच्चे के प्रति विशेष पसन्दगी नहीं दरशाई जाती। माता-पिता को इस बात की समीक्षा करते रहना चाहिए कि क्या किसी बच्चे के मन में यह सन्देह तो पैदा नहीं हो गया कि दूसरे बच्चों को उससे अधिक पसन्द किया जाता है।

अब हम बच्चों के परस्पर सहयोग की ओर आते हैं जो कि पारिवारिक सहयोग का एक महत्वपूर्ण अंग है। मनुष्य सामाजिक दिलचस्पी के लिए तब तक सम्यक् रीति से उद्यत नहीं माना जायगा, जब तक कि बच्चे परस्पर एक समान न अनुभव करें। जब तक लड़के-लड़कियां आपस में समानता का अनुभव न करेंगे तब तक दोनों में होने वाले सम्बन्धों में भारी कठिनाइयाँ पाई जाया करेंगी। बहुत-से लोग पूछते हैं, "इसका क्या कारण है कि प्रायः एक परिवार के बच्चों में ही इतनी भारी भिन्नता देखने में आती है?" कुछ वैज्ञानिकों ने उन संस्कारों को इसका कारण बताया है जो कि विरासत में प्राप्त होते हैं, परन्तु हमने देखा है कि यह एक मिथ्या विश्वास है। हम बच्चों के विकास की तुलना छोटे पौधों के उगने से कर सकते हैं। यदि कुछ पौधे एक ही जगह पर एक साथ उग रहे हैं तो वास्तव में उनमें से प्रत्येक पौधे की परिस्थिति अलग-अलग होती है। सूर्य और धरती की विशेष

कृपा का भाजन होकर यदि एक पौधा जल्दी-जल्दी बढ़ता है तो उसका विकास शेष सब पौधों के विकास को प्रभावित करता है। यह पौधा उन सब पर हावी हो जाता है, इसकी जड़ें फैल-कर शेष पौधों के खाद को चाटने लगती हैं और उनका बढ़ना बंद हो जाता है तथा वह नाटे रह जाते हैं। यही दशा उस परिवार की होती है जिसमें कोई एक प्रमुख हो। इसलिए परिवार में न माता को और न पिता को ही प्रमुख का पद अपनाना चाहिए। प्रायः ऐसा होता है कि यदि पिता बहुत सफल अथवा गुणवान व्यक्ति हो तो बच्चे यह अनुभव करने लगते हैं कि वह उसकी सफलताओं की कभी बराबरी नहीं कर सकेंगे। वह निरुत्साहित हो जाते हैं, जीवन में उनकी दिलचस्पी पर अंकुश लग जाता है। इसी कारण सुविख्यात पुरुषों की सन्तानें उनके माता-पिता व शेष समाज के लिए कभी-कभी निराशाजनक निकलती हैं। इन सन्तानों को कोई ऐसा तरीका नहीं सूझता जिससे कि वह अपने माता-पिता से आगे बढ़ सकें। यदि कोई पिता अपने व्यवसाय में बहुत सफल सिद्ध हुआ है तो उसे अपने परिवार में अपनी सफलता के विषय में कभी जोर नहीं देना चाहिए, अन्यथा उसकी सन्तान के विकास में बाधाएँ उठ खड़ी होंगी।

स्वयं बच्चों के अपने विषय में यही बात ठीक उतरती है। यदि किसी बच्चे का विकास अच्छे ढंग पर हुआ है तो संभव है कि उसे विशेष ध्यान और पक्षपातपूर्ण व्यवहार प्राप्त हो। उसे यह स्थिति सुखदाई होती है, परन्तु दूसरे बच्चे इस भेद-भाव को पहचानते और बुरा मानते हैं। खीझ और घृणा के भावों के बिना किसी मनुष्य के लिए यह सम्भव नहीं है कि किसी दूसरे से नीचे रखे जाने की स्थिति को सहन कर सके। इस प्रकार का एक प्रमुख बच्चा शेष सबको हानि पहुँचा सकता

इसलिए वह अद्वितीय नहीं रहा। अब एक प्रतिस्पर्द्धी के साथ अपने माता-पिता के ध्यान को उसे बंटाना होगा। इस परिवर्तन का सदैव ही गहरा प्रभाव पड़ता है। हम समस्याजनक बच्चों, स्नायुरोगियों, अपराधियों, शराबियों और कुटिलगामियों में प्रायः यही पाएंगे कि उनकी कठिनाइयाँ ऐसी परिस्थिति में ही आरम्भ हुई हैं। वह परिवार के सबसे बड़े बच्चे थे, इन्होंने दूसरे बच्चे के आगमन को बहुत महसूस किया। उनकी पदच्युत होने की भावना ने ही उनकी समस्त जीवन-प्रणाली का निर्माण किया।

इसी प्रकार दूसरे बच्चे भी पदच्युत हो सकते हैं। परन्तु शायद वह इस बात को इतना महसूस नहीं करेंगे। उन्हें एक दूसरे बच्चे के साथ सहयोग का पहले ही कुछ अनुभव हो चुका है। वह कभी अकेले ही ध्यान और चिन्ता का केन्द्र नहीं रहे। सबसे बड़े बच्चे के लिए यह परिवर्तन सम्पूर्ण और मौलिक होता है। यदि नये बच्चे के जन्म के बाद उसकी वास्तव में उपेक्षा की जाती है तो हम इस स्थिति में धैर्य की अपेक्षा नहीं कर सकते। यदि इस बात की वह शिकायत करती है तो हम उसे अपराधी नहीं ठहरा सकते। इसमें सन्देह नहीं कि यदि माता-पिता ने उसके मन में अपने प्रेम के प्रति विश्वास के भाव भर दिए हैं, यदि वह यह जानता है कि उसकी यह स्थिति सुरक्षित है और, इससे आवश्यक यह है कि उसे एक नये बच्चे के आगमन के लिए तैयार किया गया है तथा उसकी देख-भाल में सहयोग देने की उसे शिक्षा दी गई है, तो यह स्थिति-परिवर्तन बिना किसी प्रकार के दुष्परिणामों के बीत जायगा। साधारणतया उसे इस स्थिति के लिए तैयार नहीं किया जाता और नया बच्चा वस्तुतः ही उसे प्राप्त होने वाले ध्यान, प्रेम और सराहना को छीन लेता है।

इस पर वह माता को फिर अपनी ओर खींचने की कोशिश करना और उनका ध्यान उसे क्योंकर फिर मिल सके यह सोचना शुरू करता है। इस प्रकार कभी-कभी हम ए माता को अपने दो बच्चों से, जो उसका ध्यान एक-दूसरे से अधिक पा लेना चाहते हैं, आकृष्ट होते हुए देखते हैं। सबसे बड़ा बच्चा अधिक बल का प्रयोग कर सकता है और नई-नई चालाकियां सोच सकता है। इन परिस्थितियों में वह क्या कुछ करेगा हम इसका अनुमान कर सकते हैं। वह वही कुछ करेगा जो उन परिस्थितियों में उसके समान ध्येय का अनुसरण करते हुए हम करेंगे। हम माता के लिए चिन्ताएं पैदा करने की कोशिश करेंगे, उससे लड़ेंगे और अपने में ऐसी विशिष्टताएं उत्पन्न कर लेंगे जिनके कारण वह हमें उपेक्षित करने का साहस न कर सके। वह भी यही सब-कुछ करेगा। अन्त में अपने कर्म-कलाप से वह माता का धैर्य खत्म कर देगा। वह हर सम्भव तरीके से और पागलों की तरह लड़ने लगता है। जो कष्ट वह अपनी माता को पहुँचाता है उसकी माता उससे दुखी हो जाती है और तब वह सम्भवतः वास्तविक अर्थों में यह अनुभव करने लगता है कि प्रेम न पाने के क्या अर्थ होते हैं। वह अपनी माता का प्रेम प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहा था और परिणाम यह होता है कि वह उसे गंवा बैठता है। वह यह अनुभव करता था कि वह पृष्ठभूमि में धकेल दिया गया है और उसकी हरकतों का नतीजा यह है कि वह सचमुच ही पीछे धकेल दिया जाता है। वह अपने कामों को न्याय-संगत समझने लगता है। उसे अनुभव होता है, 'मैं पहले ही जानता था बाकी सब गलत हैं और केवल वही ठीक है।' यह इस तरह है कि वह एक जाल में फंस गया हो—जितना ही वह अधिक संघर्ष करता है उतना ही वह अधिक फंसता जाता है। इस दौरान में अपनी

स्थिति के सम्बन्ध में उसके दृष्टिकोण को पुष्टि मिलती रहती है। वह किस तरह इस संघर्ष को त्याग दे जब कि हर बात उसे यही बताती है कि वह ठीक है।

इस तरह के संघर्ष के हर मामले में हमें व्यक्तिगत परिस्थितियों की छानबीन करनी चाहिए। यदि मुकाबले में माँ भी उससे लड़ती रहती हो तो बच्चा क्रोधी, नुक्ताचीनी करनेवाला, उद्दण्ड और आज्ञाओं का उल्लंघन करनेवाला बन जायगा। जब वह अपनी माँ का विरोध करने लगता है तो प्रायः उसका दिल उसे पुरानी पक्षपातपूर्ण स्थिति को फिर से गढ़ने का अवसर दे देता है। वह अपने पिता में अधिक दिलचस्पी लेने लगता है और उसकी देखभाल और ध्यान को जीतने की कोशिश करता है। सबसे बड़े बच्चे अधिकतर अपने पिता को ही अधिक पसन्द करते हैं और उनके पक्ष की ओर झुके रहते हैं। जब कभी हम यह देखें कि बच्चा पिता को अधिक पसन्द करता है तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि यह पहले के बाद का रूप है : पहले वह माता के प्रति ही अनुरक्त था, परन्तु अब वह उसके प्रेम को गंवा चुका है और बच्चे ने उस प्रेम को, जैसे वह माता को उपालम्भ दे रहा हो, अपने पिता की ओर बदल दिया है। यदि बालक पिता को अधिक पसन्द करता है तो हम समझते हैं कि इससे पूर्व वह एक दुर्घटना का शिकार हो चुका है, उसने अपने आपको अपमानित और उपेक्षित अनुभव किया है। वह इसे भूल नहीं सकता, उसकी सारी जीवन-प्रणाली इसी भावना के चारों ओर गढ़ी जाती है।

इस प्रकार का संघर्ष काफी देर तक चलता रहता है और कभी-कभी तो उसमें सारी जिन्दगी ही बीत जाती है। बालक ने अपने आपको लड़ाई और विरोध करने के लिए ही अभ्यस्त कर लिया है और सब प्रकार की परिस्थितियों में वह इन

लड़ाई को जारी रखता है। शायद उसे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसकी दिलचस्पी वह प्राप्त कर सके। इससे वह निराश हो जाता है और सोचने लगता है कि उसे कभी भी प्यार नहीं मिल सकता। ऐसी अवस्था में, इसमें स्वभाव का चिड़चिड़ापन, अपने में ही सीमित रहना और दूसरों से मिलने जुलने की असामर्थ्य दिखलाई पड़ती है। बच्चा अपने आपको दूसरों से अलग रहने की शिक्षा देने लगता है। ऐसे बच्चे की सब गतिविधियों और अभिव्यक्तियों की दिशा अपने उस भूतकाल की ओर, जब कि वह सबके ध्यान का केन्द्र था, निर्देश करती रहती है। इसी कारण, सबसे बड़े बच्चे आमतौर पर एक न एक तरीके से भूतकाल में अपनी दिलचस्पी दिखलाया करते हैं। वह घूमकर पीछे देखने को और बीते दिनों के विषय में बातें करने को पसन्द करते हैं। वह भूतकाल का गुण-गाया करते हैं तथा भविष्य के विषय में निराशावादी होते हैं। कभी कभी ऐसा बच्चा, जो कि अपने अधिकारों को, अपने बस छोटे राज्य को जिस पर कि वह शासन किया करता था, गँवा बैठा है, अधिकार और बल के महत्व को दूसरों से अधिक अच्छी तरह समझता है। बड़ा होने पर वह अधिकार और

ध्यान को बंटाता है और इसीलिए बड़े बच्चों की अपेक्षा सहयोग के अधिक समीप होता है। उसके वातावरण में मानव-सम्पर्क की सीमा अपेक्षातर बड़ी होती है। यदि बड़ा बच्चा उसके विरुद्ध युद्ध नहीं कर रहा और उसे पीछे नहीं धकेल रहा तो उसकी स्थिति बहुत ही सन्तोषजनक होती है। किन्तु उसकी स्थिति की महत्वपूर्ण बात तो कुछ दूसरी ही है। अपने सारे बचपन में उसके सामने एक आदर्श रहता है। आयु और विकास में बड़ा एक बच्चा हमेशा ही उसके आगे रहता है। इससे विशेष प्रयत्न करने की और उस तक पहुंच जाने की प्रेरणा उसे मिलती रहती है। दूसरे बच्चों की विशिष्ट श्रेणी को पहचानना बहुत आसान है। वह इस प्रकार व्यवहार करता है जैसे कि वह किसी प्रतियोगिता में हो, मानो केवल एक या दो कदम आगे ही कोई व्यक्ति हो और उससे आगे बढ़ने की उसने जल्दी करनी हो; जैसे कि सब ओर से उस पर पूरा दबाव रहता हो। अपने बड़े भाई से आगे बढ़ने की और उसको जीतने की ही वह निरन्तर कोशिश करता है। हमें बाइबिल में कितने ही आश्चर्यप्रद, मनोवैज्ञानिक उदाहरण मिलते हैं। जेकब की कहानी में एक विशिष्ट दूसरे बच्चे के चरित्र का सुन्दर चित्रण हुआ है। उसकी हमेशा यही इच्छा थी कि वह अव्वल रहे, वह इसाव का पद छीन लेता है, उसे पीटता है, उससे आगे बढ़ जाता है। दूसरा बच्चा इस विचार से चिढ़ता है कि वह पीछे है और दूसरों की बराबरी करने के लिए उसे कठोर संघर्ष करना पड़ता है। प्रायः इसमें वह सफल भी हो जाता है। दूसरा बच्चा प्रायः पहले से अधिक गुणवान और अधिक सफल होता है। हम यहां यह नहीं कह सकते कि उसके विकास में वंशज प्रवृत्तियों का कोई हाथ है। यदि वह वेग से आगे बढ़ता है तो इसका कारण यह है कि उसने इसका अभ्यास

किया है। बड़ा होने पर और अपने परिवार के दायरे से बाहर हो जाने के बाद भी वह अपने लिए किसी आदर्श का प्रयोग किया ही करता है। किसी ऐसे व्यक्ति से जिसकी स्थिति वह अपने से बेहतर समझता है तुलना किया करता है और उससे आगे बढ़ने की कोशिश करता है। हमें इस प्रकार की विशिष्टताएं केवल जागृत जीवन में ही नहीं मिलतीं। यह व्यक्तित्व की सारी अभिव्यक्तियों पर अपना प्रभाव छोड़ती हैं और आसानी से स्वप्नों में पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, सब से बड़े बच्चे प्राय: गिरने के स्वप्न देखा करते हैं। सबसे ऊंचे पद पर होते हुए भी उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि वह अपनी श्रेष्ठता बनाए रख सकते हैं। दूसरी ओर क्रम से दूसरे बच्चे प्राय: प्रतियोगिताओं के स्वप्न देखा करते हैं। वह गाड़ियों के पीछे भागते हैं तथा बाइसिकल तेज चलाने की प्रतियोगिता में भाग लेते हैं। कभी-कभी स्वप्नों में दीख पड़ने वाली जल्दी ही यह अनुमान करने के लिए पर्याप्त होती है कि वह व्यक्ति परिवार का दूसरा बच्चा है।

फिर भी हमें यह कहना पड़ेगा कि इस विषय में कोई निश्चित नियम नहीं है। वास्तव में परिवार के अन्दर जो सब से बड़ा बच्चा है केवल वही सबसे बड़े बच्चे की तरह व्यवहार नहीं कर सकता। इस विषय में जन्म-क्रम का नहीं अपितु परिस्थिति का अधिक महत्व होता है। एक बड़े परिवार का बाद में पैदा हुआ बच्चा भी सबसे बड़े बच्चे की परिस्थिति में हो सकता है। सम्भव है दो बच्चे तो एक-दूसरे के बाद शीघ्र ही पैदा हुए हों; और उदाहरण के लिए फिर तीसरे बच्चे का जन्म बहुत काल बाद हुआ हो और तब फिर और बच्चे पैदा हुए हों। इस दशा में तीसरा बच्चा सबसे बड़े बच्चे की विशिष्टताएं प्रगट कर सकता है। इसी प्रकार दूसरे बच्चे के विषय में

बच्चे की जीवन-प्रणाली के समान है। यह सदा, यहां तक कि अपने स्वप्नों में भी अपनी श्रेष्ठता पर ही बल दिया करता है। दूसरों को उसके आगे झुकना ही है, यह सबसे अधिक प्रकाशित होता है। उसके भाई उसके स्वप्नों को अच्छी तरह समझते थे। उनके लिए यह कठिन काम नहीं था क्योंकि जोसफ उनके साथ था और उसका दृष्टिकोण काफी स्पष्ट था। जिन भावों को जोसफ अपने स्वप्न में जगाया करता था उनको भी उन्होंने अनुभव किया था। वह उससे डरते थे और उससे अपना पल्ला छुड़ाना चाहते थे। इस तरह सबसे पीछे होने के स्थान पर जोसफ आगे हो गया। वह पिछले दिनों में कुल परिवार का मुख्य स्तम्भ व सहारा बन गया। प्रायः सबसे छोटा बच्चा अपने कुल परिवार का मुख्य सहारा बन जाया करता है और यह आकस्मिक नहीं होता। इस बात को सभी लोग सदैव पहचानते रहे हैं और सबसे छोटे बच्चे की गुण-गाथा गान करते रहे हैं। वास्तव में उसकी स्थिति उसके लिए विशेष सुविधाजनक हुआ करती है। उसकी माता, उसका पिता व उसके भाई उसकी सहायता किया करते हैं। उसकी आकांक्षाओं और प्रयत्नों को उत्तेजना देने के लिए काफी सामान होता है और उस पर पीछे से आक्रमण करनेवाला तथा उसका ध्यान भंग करनेवाला कोई नहीं होता।

जैसा कि हमने देखा है, इसके बावजूद भी दूसरे नम्बर पर समस्याजनक बच्चों का अधिकांश भाग सबसे छोटे बच्चों में से आता है। साधारणतया इसका कारण इस बात में निहित है कि परिवार के सब सदस्य लाड-प्यार करके उन्हें बिगाड़ देते हैं। इस तरह बिगाड़ा हुआ बच्चा कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। वह अपने ही प्रयत्न से सफल होने का साहस गँवा बैठता है। सबसे छोटे बच्चे सदा ही महत्वाकांक्षी होते हैं,

व्यक्तियों को पसन्द करते हैं। कभी-कभी किसी इकलौते बच्चे को इस बात का अत्यधिक डर बना रहता है कि कहीं कोई भाई अथवा बहन उसका साथी न बन जाय। परिवार के मित्र उससे कहते हैं, "तुम्हारे एक छोटा भाई अथवा बहन जरूर होनी चाहिए।" इस सम्भावना को वह बहुत अधिक नापसन्द करता है। वह सदा के लिए स्वयं ही सब देख-माल व चिन्ता का केन्द्र बना रहना चाहता है। वह वास्तव में यही समझता है कि यह उसीका अधिकार है। यदि उसे उसकी स्थिति के प्रति चुनौती मिलती है तो वह उसे अन्याय समझता है। बाद के जीवन में जब कि वह ध्यान का केन्द्र नहीं रहता उसे बहुत कठिनाइयाँ पेश आती हैं। उसके विकास के लिए खतरे की एक दूसरी बात यह है कि उसका जन्म एक भीरु वातावरण में होता है। यदि किसी ऐन्द्रिय कारण से उस परिवार में और बच्चे उत्पन्न नहीं हो सकते तो हम इकलौते बच्चे की समस्याओं को सुलझाने में विवश होने के सिवा और कुछ नहीं कर सकते। परन्तु हम प्रायः इकलौते बच्चों को ऐसे परिवारों में देखते हैं जहाँ कि और बच्चों के जन्म की आशा की जा सकती है। माता-पिता भीरु और निराशावादी होते हैं। वह यह अनुभव करते हैं कि एक से अधिक बच्चे होने पर वह अपने आर्थिक प्रश्नों को नहीं सुलझा सकेंगे। इस प्रकार वह सारा वातावरण ही चिन्ता से भरा रहता है, परिणामस्वरूप बच्चे को पर्याप्त हानि उठानी पड़ती है।

यदि बच्चों के जन्म-काल में अधिक अन्तर हो तो प्रत्येक बच्चे में इकलौते बच्चे की कुछ विशेषताएँ पाई जायंगी। वह अवस्था बहुत लाभकारक नहीं होती। मुझे प्रायः पूछा जाता है "आपके विचार में बच्चों के जन्म में कितना अन्तर होना उचित है? क्या बच्चों को एक के बाद एक जल्दी ही उत्पन्न

जिसे कि कोई भी बहुत पसन्द नहीं करता। इस समस्या का हल तभी सम्भव है जब कि साथ-ही-साथ ऐसा सामाजिक-जीवन भी चले जिसमें कि बच्चे हिस्सा ले सकें और जिसमें कि वह दूसरे बच्चों से मिल-जुल सकें। अन्यथा सम्भव है कि लड़कियों से घिरा हुआ वह लड़कियों की तरह व्यवहार करे। एक स्त्रैण वातावरण मिश्रित वातावरण से काफी भिन्न होता है। उस परिवार का घर यदि चालू घरों की तरह नहीं है, वरन् ऐसा है जिसे कि उसमें रहने वाले अपनी इच्छानुसार सजा सकें तो यह निश्चय रखिए कि वह घर जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं स्वच्छ और सुव्यवस्थित होगा। प्रयोग में आने वाले रंग वहाँ सावधानी से चुने जायंगे और हजारों प्रकार की छोटी-छोटी बातों पर विशेष विचार का उपयोग किया जायगा। यदि उस घर में पुरुष और लड़के भी होंगे तो इसमें उतनी सफाई नहीं होगी; कठोरता, शोर और टूटे हुए सामान का अपेक्षातर बाहुल्य होगा। अधिक संभव यही है कि लड़कियों में पलने वाला ऐसा लड़का स्त्रैण रुचि और जीवन पर स्त्रैण दृष्टिकोण को लेकर बड़ा होगा।

दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि वह अपने वातावरण के विरुद्ध जोर की लड़ाई लड़े और अपने पुरुषत्व का बहुत महत्व आँके। ऐसी अवस्था में वह स्त्रियों के प्रभुत्व के विरुद्ध सदा सतर्क रहेगा। उसका विचार होगा कि उसे अपने भेद और अपनी श्रेष्ठता पर बल देना ही है। इस प्रकार एक स्थायी तनाव बना रहेगा। उसका विकास दोनों ओर की चरम सीमाओं तक जा सकेगा। वह या तो बहुत मजबूत अथवा बहुत कमजोर होने का अभ्यास करेगा। यह एक ऐसी परिस्थिति है जिस पर अधिक अन्वेषण और विचार की आवश्यकता है। ऐसी स्थिति प्रतिदिन देखने में नहीं आती। इससे पूर्व कि इसके विषय में हम कुछ अधिक कहें ऐसे दूसरे उदाहरणों का परीक्षण करना आव-

श्यक है। प्राय: इसी तरह, लड़कों में अकेली लड़की या तो बहुत स्त्रैण अथवा बहुत पुरुषत्वपूर्ण चरित्र का विकास कर सकती है। आमतौर पर वह जीवन-भर अरक्षितता और बेबसी के भावों से पीड़ित रहती है।

जब कभी भी मैंने वयस्कों के विषय में विचार किया है तो उन पर बचपन में पड़े गये प्रभावों को पाया है जो स्थायी होते हैं। परिवार में उनकी स्थिति उनकी जीवन-प्रणाली पर एक अमिट छाप डाल देती है। विकास की प्रत्येक कठिनाई परिवार में प्रतिद्वन्द्विता अथवा सहयोग के अभाव के कारण पैदा होती है। यदि हम चारों ओर अपने सामाजिक जीवन पर, केवल अपने ही नहीं अपितु अपने सारे संसार पर, दृष्टि दौड़ाएँ और यह पूछने का प्रयत्न करें कि इसमें प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता ही क्यों इतने स्पष्ट पहलू होते हैं तब हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सर्वत्र लोग दूसरों पर विजय पाने, उन्हें हरा देने और उनसे बढ़ जाने के आदर्श के पीछे ही भाग-दौड़ मचाए हुए हैं। यह आदर्श उन बच्चों को आरम्भिक बचपन में मिले अभ्यास व शिक्षा, तथा स्पर्द्धाओं व प्रतियोगिता के प्रयत्नों का परिणाम होता है जो कि अपने-आपको अपने कुल परिवार का हिस्सा नहीं समझ सके। बच्चों को सहयोग की अच्छी शिक्षा देकर ही हम इस अलाभप्रद स्थिति से पीछा छुड़ा सकते हैं।